कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 17, Issue 66
April – June, 2020

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore – Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

सम्पादन व प्रकाशन

डॉ. स्नेह ठाकुर

भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १७ - अंक ६६, अप्रैल - जून २०२०

कल का सूरज

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

मैं कल फिर आऊँगा
उगूँगा बंजर खेत में
किसी आत्महत्या करते किसान के
उजाला बाटूँगा अँधियारे घरों को
जहाँ आज भी बच्चा लालटेन की रोशनी में
ककहरा याद करता है
उष्णता दूँगा उस हिम-पुरुष को
जो ठिठुरते काट रहा है सर्दी
दादा-परदादा के फटे हुए कम्बल में
धधकूँगा ज्वाला बन
शोषण-अन्याय-ईर्ष्या-द्वेष और पूर्वाग्रहों के विरुद्ध
तपूँगा किसी सूर्यपुत्र की तरह
'अग्निसागर' का अग्निसागर बन
मेरे मित्र, मुझे गलत मत समझना
मैं अस्ताचल को बढ़ते हुए उदास अवश्य था
पर हारा नहीं हूँ
मैं आज भी लड़ रहा हूँ
एक अनंत युद्ध से
तुम्हारे सुख के लिए
विश्व-शांति और वसुधैव कुटुम्बकम् के लिए
मैं डूबता सूरज हूँ
कल का यौवन हूँ
चढ़ते सूरज को प्रणाम करने वाले दोस्त,
मैं निराशा को आशा में बदलता
जन-जन का जीवन हूँ.

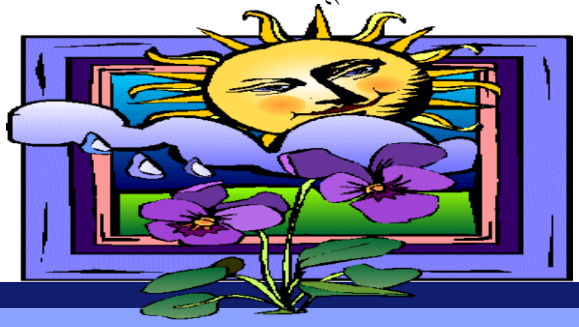

वसुधा

सम्पादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
सम्पादकीय		२
नोबल पुरस्कार विजेता		
गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर	डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा	३
मातृ-दिवस	डॉ. ओम गुप्ता	९
एक उधार बाकी है	भावना सक्सैना	१०
तुम्हारी तलाश	डॉ. अजय श्रीवास्तव	१४
ज्ञान से मानव क्रियमान बनता है	डॉ. अशोक आर्य	१५
धरती है बंगाल की	मनोज कुमार शुक्ल 'मनोज'	१७
लखनऊ में एक मौत	दिलीप कुमार सिंह	१९
मैं कौन!	श्रुति पाण्डेय	२४
संचार माध्यमों के नए आयाम	डॉ. अंजु लता सिंह	२६
ग़ज़ल	विज्ञान व्रत	२७
पोट्रेट	धीरज कुमार श्रीवास्तव	२८
स्निग्ध ज्योत्सना	डॉ. अरुण खेवरिया	३३
क्या करें अपनी हिन्दी के लिए	जगदम्बी प्रसाद यादव	३४
गीत	सुभाष ऋतुज	३६
भारत बनाम इण्डिया	संतोष खन्ना	३७
मेरा देश	डॉ. स्नेह ठाकुर	३९
हार के आगे ही जीत है	आचार्य शिवम्	४३
कल का सूरज	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१ अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

सम्पादकीय

ईश्वर की कृपा और सभी शुभचिंतकों की शुभ-कामनाओं स्वरूप मेरा नया उपन्यास "दशानन रावण" प्रकाशित हो गया है; और मेरा सौभाग्य है कि प्रकाशित होते ही उसे बहुतों की प्रशंसा मिली. ईश्वर कृपा से ही मेरे उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा", "लोक-नायक राम" एवं अध्यात्मिक जीवनी "नाकंडा अम्माँ" के चतुर्थ संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं.

राष्ट्रपति माननीय श्री राम नाथ कोविन्द के ओ.एस.डी. डॉ. राकेश दुबे जी मुझे साहित्यिक कार्यक्रम हेतु जयपुर, राजस्थान ले गए. उनके सौजन्य से मुझे वहाँ कैनेडा में हिन्दी की स्थिति और उपन्यास "लोक-नायक राम" के बारे में चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ.

श्री रवि कुमार ने, जो हिन्दी सेंटर व मौडलिंगुआ के संयोजक हैं एवं जिन्होंने हाल ही में विचारक मंच का निर्माण किया है और जिसका मुझे प्रमुख परामर्शदाता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, विचारक मंच के अन्तर्गत उन्होंने मेरे उपन्यास सम्बंधित कुछ वीडियो बनाए हैं जिनमें से मेरे उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" https://youtu.be/jIBUu9Icz-A एवं "लोक-नायक राम" https://youtu.be/tyzL_dSKhiw पर बनाए गए वीडियो यू ट्यूब आदि पर भी प्रकाशित हो चुके हैं, व अन्य उपन्यास "श्रीरामप्रिया सीता" व दशानन रावण आदि पर कुछ अंतराल से प्रकाशित होंगे, इस हेतु रवि जी का हार्दिक धन्यवाद कि उन्होंने विचारक मंच के अंतर्गत मुझे अपने विचार जनता तक पहुँचाने का साधन उपलब्ध कराया.

भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष, सांसद, श्री प्रभात झा ने अपने सुपुत्र श्री अयत्न के विवाह समारोह में मुझे भी आमंत्रित किया। विवाह उत्सव बहुत ही शानदार था. उसमें मोदी जी एवं अमित शाह जी भी वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिए पधारे थे. प्रभात जी ने बड़ी आत्मीयता से विवाह समारोह में मेरा स्वागत किया. शालीन व्यक्तित्व के धनी प्रभात जी एक बहुत अच्छे लेखक भी हैं.

श्री बी.एल. गौड़ ने एक बहुत ही अच्छा कवि सम्मेलन का आयोजन किया जहाँ मुझे पुष्प एवं शॉल से सम्मानित किया.

केंद्रीय हिन्दी संस्थान निदेशक डॉ. अवनीश कुमार ने केंद्रीय हिन्दी संस्थान में प्रवासी लेखक हेतु एक समारोह का आयोजन किया जिसमें मुझे अपने विचार रखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. अलग से भी एक दिन उनके कार्यालय में हिन्दी की दशा एवं दिशा पर भी उनसे मेरा विचार-विमर्श हुआ. उनके अमूल्य समय हेतु धन्यवाद.

पद्मश्री विभूषित डॉ. श्याम सिंह शशि ने अपने शिक्षा भवन में आयोजित समारोह में मुझे मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया तथा शॉल व पुष्प-गुच्छ से सम्मानित किया. हार्दिक धन्यवाद एवं आभार.

डॉ. बेचैन कंडियाल जो कि एक बहुत अच्छे कवि/लेखक हैं, से मुलाकात अविस्मरणीय रही. कंडियाल जी केन्द्रीय मानव संसधान मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक जी, जो एक अच्छे साहित्यकार भी हैं, के पी.ए. हैं.

पार्लियामेंट के श्री उपेन्द्र नाथ के सौजन्य से प्रिय प्रियम्बरा ने लोक सभा टी.वी. हेतु मेरा साक्षात्कार लिया जो लोक सभा टी.वी. एवं यू ट्यूब पर प्रकाशित हुआ - https://youtu.be/msNsOJDLW50 इस सारगर्भित साक्षात्कार के लिए उपेन्द्र जी, प्रियम्बरा जी, कैमरा मैन व इससे जुड़े सभी व्यक्तियों को सादर नमन.

भाभी श्रीमती ऋषि एवं मित्र तेजिंदर जी के सहयोग से पंचशील रोटरी क्लब दिल्ली में मेरे उपन्यास "कैकेयी चेतना-शिखा" पर मेरे व्याख्यान का आयोजन किया गया. भाभी, तेजिंदर जी एवं रोटरी क्लब के सभी सदस्यों का आभार जिन्होंने बहुत ही प्रेमपूर्वक मुझे सुना, सराहा और मेरा उत्साह बढ़ाया. तेजेन्दर जी के सौजन्य से ही रोटरी क्लब के सदस्यों और मुझे पार्लियामेंट की यात्रा के दौरान लोक सभा के सत्र में दोनों पक्षों की गरमागरम बहस सुनने का अवसर प्राप्त हुआ. अत: इस हेतु भी तेजिंदर जी को पुन: हार्दिक धन्यवाद एवं आभार.

ईश्वर से प्रार्थना है कि कोरोना वायरस से त्रस्त विश्व को राहत दे।

शुभ कामनाओं सहित सस्नेह स्नेह ठाकुर

नोबल पुरस्कार विजेता गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर

(गुरुदेव के जन्म-दिवस पर विशेष – सम्पादक)

डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म ७ मई, १८६१ कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में देवेंद्रनाथ टैगोर और शारदा देवी के पुत्र के रूप में एक सम्पन्न बांग्ला परिवार में हुआ था। बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री टैगोर सहज ही कला के कई स्वरूपों की ओर आकृष्ट हुए जैसे - साहित्य, कविता, नृत्य और संगीत।

दुनिया की समकालीन सांस्कृतिक रुझान से वे भली-भाँति अवगत थे। साठ के दशक के उत्तरार्ध में टैगोर की चित्रकला यात्रा शुरू हुई। यह उनकी सजगता का विस्तार था। हालाँकि उन्हें कला की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिली थी उन्होंने एक सशक्त एवं सहज दृश्य शब्दकोश का विकास कर लिया था। श्री टैगोर की इस उपलब्धि के पीछे आधुनिक पाश्चात्य, पुरातन एवं बाल्य कला जैसे दृश्य कला के विभिन्न स्वरूपों की उनकी गहरी समझ थी।

शिक्षा

रबीन्द्रनाथ टैगोर की स्कूल की पढ़ाई प्रतिष्ठित सेंट ज़ेवियर स्कूल में हुई। टैगोर ने बैरिस्टर बनने की चाहत में १८७८ में इंग्लैंड के ब्रिजटोन पब्लिक स्कूल में नाम दर्ज कराया। उन्होंने लंदन कॉलेज विश्वविद्यालय में क़ानून का अध्ययन किया लेकिन १८८० में बिना डिग्री हासिल किए ही वापस आ गए। रबीन्द्रनाथ टैगोर को बचपन से ही कविताएँ और कहानियाँ लिखने का शौक़ था। उनके पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर एक जाने-माने समाज सुधारक थे। वे चाहते थे कि रबीन्द्र बडे होकर बैरिस्टर बनें। इसलिए उन्होंने रबीन्द्र को क़ानून की पढ़ाई के लिए लंदन भेजा। लेकिन रबीन्द्र का मन साहित्य में ही रमता था। उन्हें अपने मन के भावों को काग़ज़ पर उतारना पसंद था। आख़िरकार, उनके पिता ने पढ़ाई के बीच में ही उन्हें वापस भारत बुला लिया और उन पर घर-परिवार की ज़िम्मेदारियाँ डाल दीं। रबीन्द्रनाथ टैगोर को प्रकृति से बहुत प्यार था। वे गुरुदेव के नाम से लोकप्रिय थे। भारत आकर गुरुदेव ने फिर से लिखने का काम शुरू किया।

रचनाएँ

रबीन्द्रनाथ ठाकुर एक बांग्ला कवि, कहानीकार, गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार थे। जिन्हें १९१३ में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया। टैगोर ने बांग्ला साहित्य में नए गद्य और छंद तथा लोकभाषा के उपयोग की शुरुआत की और इस प्रकार शास्त्रीय संस्कृत पर आधारित पारम्परिक प्रारूपों से उसे मुक्ति दिलाई। धर्म सुधारक देवेन्द्रनाथ टैगोर के पुत्र रबींद्रनाथ ने बहुत कम आयु में काव्य लेखन प्रारम्भ कर दिया था। १८७० के दशक के उत्तरार्ध में वह इंग्लैंड में अध्ययन अधूरा छोड़कर भारत वापस लौट आए। भारत में रबींद्रनाथ टैगोर ने १८८० के दशक में कविताओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित की तथा मानसी (१८९०) की रचना की। यह संग्रह उनकी प्रतिभा की परिपक्वता का परिचायक है। इसमें उनकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएँ शामिल हैं, जिनमें से कई बांग्ला भाषा में अपरिचित नई पद्य शैलियों में हैं। साथ ही इसमें समसामयिक बंगालियों पर कुछ सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य भी हैं।

दो-दो राष्ट्रगानों के रचयिता रवीन्द्रनाथ टैगोर पारम्परिक ढाँचे के लेखक नहीं थे। वे एकमात्र कवि हैं, जिनकी दो रचनाएँ दो देशों का राष्ट्रगान बनीं - भारत का राष्ट्र-गान जन गण मन और बांग्लादेश का राष्ट्रीय गान आमार सोनार बांग्ला गुरुदेव की ही रचनाएँ हैं।

वे वैश्विक समानता और एकांतिकता के पक्षधर थे। ब्रह्मसमाजी होने के बावज़ूद उनका दर्शन एक अकेले व्यक्ति को समर्पित रहा। चाहे उनकी ज़्यादातर रचनाएँ बांग्ला में लिखी हुई हों। वह एक ऐसे लोक कवि थे जिनका केन्द्रीय तत्त्व अंतिम आदमी की भावनाओं का परिष्कार करना था। वह मनुष्य मात्र के स्पन्दन के कवि थे। एक ऐसे कलाकार जिनकी रगों में शाश्वत प्रेम की गहरी अनुभूति है, एक ऐसा नाटककार जिसके रंगमंच पर सिर्फ़ 'ट्रेजडी' ही ज़िंदा नहीं है, मनुष्य की गहरी जिजीविषा भी है। एक ऐसा कथाकार जो अपने आस-पास से कथालोक चुनता है, बुनता है, सिर्फ़ इसलिए नहीं कि घनीभूत पीड़ा की आवृत्ति करे या उसे ही अनावृत करे, बल्कि उस कथालोक में वह आदमी के अंतिम गंतव्य की तलाश भी करता है।

सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

सियालदह और शजादपुर स्थित अपनी ख़ानदानी जायदाद के प्रबंधन के लिए १८९१ में टैगोर ने १० वर्ष तक पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांगला देश) में रहे, वहाँ वह अक्सर पद्मा नदी (गंगा नदी) पर एक हाउस बोट में ग्रामीणों के निकट सम्पर्क में रहते थे और उन ग्रामीणों की निर्धनता व पिछड़ेपन के प्रति टैगोर की संवेदना उनकी बाद की रचनाओं का मूल स्वर बनी। उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, जिनमें 'दीन-हीनों' का जीवन और उनके छोटे-मोटे दुख' वर्णित हैं, १८९० के बाद की हैं और उनकी मार्मिकता में हल्का सा विडम्बना का पुट है। जो टैगोर की निजी विशेषता है तथा जिसे निर्देशक सत्यजित राय अपनी बाद की फ़िल्मों में कुशलतापूर्वक पकड़ पाए हैं।

गल्पगुच्छ की तीन जिल्दों में उनकी सारी चौरासी कहानियाँ संग्रहीत हैं, जिनमें से केवल दस प्रतिनिधि कहानियाँ चुनना टेढ़ी खीर है। १८९१ से १८९५ के बीच का पाँच वर्षों का समय रवीन्द्रनाथ की साधना का महान् काल था। वे अपनी कहानियाँ सबुज पत्र (हरे पत्ते) में छपाते थे। आज भी पाठकों को उनकी कहानियों में 'हरे पत्ते' और 'हरे गाछ' मिल सकते हैं। उनकी कहानियों में सूर्य, वर्षा, नदियाँ और नदी किनारे के सरकंडे, वर्षा ऋतु का आकाश, छायादार गाँव, वर्षा से भरे अनाज के प्रसन्न खेत मिलते हैं। उनके साधारण लोग कहानी खत्म होते-होते असाधारण मनुष्यों में बदल जाते हैं। महानता की पराकाष्ठा छू आते हैं। उनकी मूक पीड़ा की करुणा हमारे हृदय को अभिभूत कर लेती है।

उनकी कहानी पोस्टमास्टर इस बात का सजीव उदाहरण है कि एक सच्चा कलाकार साधारण उपकरणों से कैसी अद्‌भुत सृष्टि कर सकता है। कहानी में केवल दो सजीव साधारण-से पात्र हैं। बहुत कम घटनाओं से भी वे अपनी कहानी का महल खड़ा कर देते हैं। एक छोटी लड़की कैसे बड़े-बड़े इंसानों को अपने स्नेह-पाश में बाँध देती हैं। 'क़ाबुलीवाला' भी इस बात का जीता-जागता उदाहरण है। रवीन्द्रनाथ ने पहली बार अपनी कहानियों में साधारण की महिमा का बखान किया।

पत्नी मृणालिनी के साथ रबीन्द्रनाथ टैगोर

रवीन्द्रनाथ की कहानियों में अपढ़ 'क़ाबुलीवाला' और सुसंस्कृत बंगाली भूत भावनाओं में एक समान हैं। उनकी क़ाबुलीवाला, मास्टर साहब और 'पोस्टमास्टर' कहानियाँ आज भी लोकप्रिय कहानियाँ हैं - लोकप्रिय

और सर्वश्रेष्ठ भी और बनी रहेंगी। उनकी कहानियाँ सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी लोकप्रिय हैं और लोकप्रिय होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ हैं।

अपनी कल्पना के पात्रों के साथ रवीन्द्रनाथ की अद्‌भुत सहानुभूतिपूर्ण एकात्मकता और उसके चित्रण का अतीव सौंदर्य उनकी कहानी को सर्वश्रेष्ठ बना देते हैं जिसे पढ़कर द्रवित हुए बिना नहीं रहा जा सकता। उनकी कहानियाँ फ़ौलाद को मोम बनाने की क्षमता रखती हैं।

अतिथि का तारापद रवीन्द्रनाथ की अविस्मरणीय सृष्टियों में है। इसका नायक कहीं बँधकर नहीं रह पाता। आजीवन 'अतिथि' ही रहता है। क्षुधित पाषाण, आधी रात में (निशीथे) तथा 'मास्टर साहब' प्रस्तुत संग्रह की इन तीन कहानियों में दैवी तत्त्व का स्पर्श मिलता है। इनमें पहली 'क्षुधित पाषाण' में कलाकार की कल्पना अपने सुंदरतम रूप में व्यक्त हुई है। यहाँ अतीत वर्तमान के साथ वार्तालाप करता है - रंगीन प्रभामय अतीत के साथ नीरस वर्तमान। समाज में महिलाओं का स्थान तथा नारी जीवन की विशेषताएँ उनके लिए गम्भीर चिंता के विषय थे और इस विषय में भी उन्होंने गहरी अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है।

संगीत

राष्ट्रगान (जन गण मन) के रचयिता टैगोर को बंगाल के ग्राम्यांचल से प्रेम था और इनमें भी पद्मा नदी उन्हें सबसे अधिक प्रिय थी, जिसकी छवि उनकी कविताओं में बार-बार उभरती है। उन वर्षों में उनके कई कविता संग्रह और नाटक आए, जिनमें सोनार तरी (१८९४; सुनहरी नाव) तथा चित्रांगदा (१८९२)उल्लेखनीय हैं। वास्तव में टैगोर की कविताओं का अनुवाद लगभग असम्भव है और बांग्ला समाज के सभी वर्गों में आज तक जनप्रिय उनके २,००० से अधिक गीतों, जो 'रबींद्र संगीत' के नाम से जाने जाते हैं, पर भी यह लागू होता है।

चित्रकला

साठ के दशक के उत्तरार्ध में टैगोर की चित्रकला यात्रा शुरू हुई। यह उनकी कविता का विस्तार था। हालाँकि उन्हें कला की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिली थी उन्होंने एक सशक्त एवं सहज दृश्य शब्दकोश का विकास कर लिया था। श्री टैगोर की इस उपलब्धि के पीछे आधुनिक पाश्चात्य, पुरातन एवं बाल्य कला जैसे दृश्य कला के विभिन्न स्वरूपों की उनकी गहरी समझ थी। एक अवचेतन प्रक्रिया के रूप में आरम्भ टैगोर की पांडुलिपियों में उभरती और मिटती रेखाएँ ख़ास स्वरूप लेने लगीं। धीरे-धीरे टैगोर ने कई चित्रों को उकेरा जिनमें कई बेहद काल्पनिक एवं विचित्र जानवरों, मुखौटों, रहस्यमयी मानवीय चेहरों, गूढ़ भू-परिदृश्यों, चिड़ियों एवं फूलों के चित्र थे। उनकी कृतियों में फंतासी, लयात्मकता एवं जीवंतता का अद्‌भुत संगम दिखता है। कल्पना की शक्ति ने उनकी कला को जो विचित्रता प्रदान की उसकी व्याख्या शब्दों में सम्भव नहीं है। कभी-कभी तो ये अप्राकृतिक रूप से रहस्यमयी और कुछ धुँधली याद दिलाते हैं। तकनीकी रूप में टैगोर ने सर्जनात्मक स्वतंत्रता का आनंद लिया। उनके पास कई उद्वेलित करने वाले विषय थे जिनको लेकर बेशक कैनवस पर रंगीन रोशनाई से लिपा-पुता चित्र बनाने में भी उन्हें हिचक नहीं हुई। रोशनाई से बने उनके चित्र में एक स्वच्छंदता दिखती है जिसके तहत कूची, कपड़ा, रुई के फाहों, और यहाँ तक कि अँगुलियों के बख़ूबी इस्तेमाल किए गए हैं। टैगोर के लिए कला मनुष्य को दुनिया से जोड़ने का माध्यम है। आधुनिकवादी होने के नाते टैगोर विशेष कर कला के क्षेत्र में पूरी तरह समकालीन थे।

यीट्स द्वारा अनुवाद

टैगोर की कविताओं की पांडुलिपि को सबसे पहले विलियम रोथेनस्टाइन ने पढ़ा था और वे इतने मुग्ध हो गए कि उन्होंने अँग्रेज़ी कवि यीट्स से सम्पर्क किया और पश्चिमी जगत् के लेखकों, कवियों, चित्रकारों और

चिंतकों से टैगोर का परिचय कराया। उन्होंने ही इंडिया सोसायटी से इसके प्रकाशन की व्यवस्था की। शुरू में ७५० प्रतियाँ छापी गईं, जिनमें से सिर्फ़ २५० प्रतियाँ ही बिक्री के लिए थीं। बाद में मार्च १९१३ में मेकमिलन एंड कंपनी लंदन ने इसे प्रकाशित किया और १३ नवम्बर १९१३ को नोबेल पुरस्कार की घोषणा से पहले इसके दस संस्करण छापने पड़े। यीट्स ने टैगोर के अँग्रेज़ी अनुवादों का चयन करके उनमें कुछ सुधार किए और अंतिम स्वीकृति के लिए उन्हें टैगोर के पास भेजा और लिखाः 'हम इन कविताओं में निहित अजनबीपन से उतने प्रभावित नहीं हुए, जितना कि यह देखकर कि इनमें तो हमारी ही छवि नज़र आ रही है।' बाद में यीट्स ने ही अँग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका लिखी। उन्होंने लिखा कि कई दिनों तक इन कविताओं का अनुवाद लिए मैं रेलों, बसों और रेस्तराओं में घूमा हूँ और मुझे बार-बार इन कविताओं को इस डर से पढ़ना बंद करना पड़ा है कि कहीं कोई मुझे रोते-सिसकते हुए न देख ले। अपनी भूमिका में यीट्स ने लिखा कि हम लोग लम्बी-लम्बी किताबें लिखते हैं जिनमें शायद एक भी पन्ना लिखने का ऐसा आनंद नहीं देता है। बाद में गीतांजलि का जर्मन, फ्रैंच, जापानी, रूसी आदि विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हुआ और टैगोर की ख्याति दुनिया के कोने-कोने में फैल गई।

शांतिनिकेतन, बीरभूम, पश्चिम बंगाल

१९०१ में टैगोर ने पश्चिम बंगाल के ग्रामीण क्षेत्र में स्थित शांतिनिकेतन में एक प्रायोगिक विद्यालय की स्थापना की। जहाँ उन्होंने भारत और पश्चिमी परम्पराओं के सर्वश्रेष्ठ को मिलाने का प्रयास किया। वह विद्यालय में ही स्थायी रूप से रहने लगे और १९२१ में यह विश्व भारती विश्वविद्यालय बन गया। १९०२ तथा १९०७ के बीच उनकी पत्नी तथा दो बच्चों की मृत्यु से उपजा गहरा दु:ख उनकी बाद की कविताओं में परिलक्षित होता है, जो पश्चिमी जगत् में गीतांजलि, साँग ऑफ़रिंग्स (१९१२) के रूप में पहुँचा। शांति निकेतन में उनका जो सम्मान समारोह हुआ था उसका सचित्र समाचार भी कुछ ब्रिटिश समाचार पत्रों में छपा था। १९०८ में कोलकाता में हुए काँग्रेस अधिवेशन के सभापति और बाद में ब्रिटेन के प्रथम लेबर प्रधानमंत्री रेम्जे मेक्डोनाल्ड १९१४ में एक दिन के लिए शांति निकेतन गए थे। उन्होंने शांति निकेतन के सम्बंध में पार्लियामेंट के एक लेबर सदस्य के रूप में जो कुछ कहा वह भी ब्रिटिश समाचार पत्रों में छपा। उन्होंने शांति निकेतन के सम्बंध में सरकारी नीति की भर्त्सना करते हुए इस बात पर चिंता व्यक्त की थी कि शांति निकेतन को सरकारी सहायता मिलना बंद हो गई है। पुलिस की ब्लेक लिस्ट में उसका नाम आ गया है और वहाँ पढ़ने वाले छात्रों के माता-पिता को धमकी भरे पत्र मिल रहे हैं। पर ब्रिटिश समाचार पत्र बराबर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इस प्रकार प्रशंसक नहीं रहे।

ब्रिटेन में गुरुदेव

रवीन्द्रनाथ ठाकुर १८७८ से लेकर १९३० के बीच सात बार इंग्लैंड गए। १८७८ और १८९० की उनकी पहली दो यात्राओं के सम्बंध में ब्रिटेन के समाचार पत्रों में कुछ भी नहीं छपा क्योंकि तब तक उन्हें वह ख्याति नहीं मिली थी कि उनकी ओर किसी विदेशी समाचार पत्र का ध्यान जाता। उस समय तो वे एक विद्यार्थी ही थे।

पहली पुस्तक का प्रकाशन

जब वे तीसरी बार १९१२ में लंदन गए तब तक उनकी कविताओं की पहली पुस्तक का अँग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हो चुका था, अत: उनकी ओर ब्रिटेन के समाचार पत्रों का ध्यान गया। उनकी यह तीसरी

ब्रिटेन यात्रा वस्तुत: उनके प्रशंसक एवं मित्र बृजेन्द्रनाथ सील के सुझाव एवं अनुरोध पर की गई थी और इस यात्रा के आधार पर पहली बार वहाँ के प्रमुख समाचार पत्र 'द टाइम्स' में उनके सम्मान में दी गई एक पार्टी का समाचार छपा जिसमें ब्रिटेन के कई प्रमुख साहित्यकार यथा डब्ल्यू.बी.यीट्स, एच.जी.वेल्स, जे.डी. एण्डरसन और डब्ल्यू.रोबेन्सटाइन आदि उपस्थित थे।

वैज्ञानिक आंइसटीन के साथ रबीन्द्रनाथ टैगोर

इसके कुछ दिन बाद 'द टाइम्स' में ही उनके काव्य की प्रशंसा में तीन पैराग्राफ लम्बा एक समाचार भी छपा और फिर उनकी मृत्यु के समय तक ब्रिटेन के समाचार पत्रों में उनके जीवन और कृतित्व के सम्बंध में कुछ-न-कुछ बराबर ही छपता रहा। इस पुस्तक से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार परम्परागत रूप से भारत विरोधी समाचार पत्र उनके सम्बंध में चुप्पी ही लगाए रहे पर निष्पक्ष और भारत के प्रति सहानुभूति रखने वाले समाचार पत्रों ने बड़ी उदारता से उनके सम्बंध में समाचार, लेख आदि प्रकाशित किए। उदाहरणत: ब्रिटेन के कट्टर रुढ़िवादी कंजरवेटिव समाचार पत्र 'डेली टेलीग्राफ' ने उन्हें नोबेल पुरस्कार मिलने की सूचना तक प्रकाशित करना उचित नहीं समझा जबकि उस दिन के अन्य सभी समाचार पत्रों में इस सूचना के साथ ही पुरस्कृत कृति 'गीतांजलि' के सम्बंध में वहाँ के समीक्षकों की सम्मति भी प्रकाशित हुई।

गीतांजलि का अँग्रेज़ी अनुवाद

'गीतांजलि' का अँग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित होने के एक सप्ताह के अंदर लंदन से प्रकाशित होने वाले प्रसिद्ध साप्ताहिक 'टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट' में उसकी समीक्षा प्रकाशित हुई थी और बाद में आगामी तीन माह के अंदर तीन समाचार पत्रों में भी उसकी समीक्षा प्रकाशित हुई। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को नोबेल पुरस्कार मिलने के सम्बंध में ब्रिटिश समाचार पत्रों में मिश्रित प्रतिक्रिया हुई। इस सम्बंध में 'द टाइम्स' ने लिखा था कि 'स्वीडिश एकेडेमी' के इस अप्रत्याशित निर्णय पर कुछ समाचार पत्रों में आश्चर्य व्यक्त किया गया है पर इस पत्र के स्टॉकहोम स्थित संवाददाता ने अपने डिस्पेच में लिखा था कि स्वीडन के प्रमुख कवियों और लेखकों ने स्वीडिश कमेटी के सदस्यों की हैसियत से नोबेल कमेटी के इस निर्णय पर पूर्ण संतोष व्यक्त किया है। इसी सम्बंध में ब्रिटेन के प्रतिष्ठित समाचार पत्र 'मेन्चेस्टर गार्डियन' ने लिखा था कि रवीन्द्रनाथ टैगोर को नोबेल पुरस्कार मिलने की सूचना पर कुछ लोगों को आश्चर्य अवश्य हुआ पर असंतोष नहीं। टैगोर एक प्रतिभाशाली कवि हैं। बाद में 'द केरसेण्ट मून' की समीक्षा करते हुए एक समाचार पत्र ने लिखा था कि इस बंगाली (यानी रवीन्द्रनाथ ठाकुर) का अँग्रेज़ी भाषा पर जैसा अधिकार है वैसा बहुत कम अँग्रेज़ों का होता है।

जलियाँवाला कांड की निंदा

१९१९ में हुए जलियाँवाला कांड की जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने निंदा की तो ब्रिटिश समाचार पत्रों का रुख़ एकाएक बदल गया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जलियाँवाला काण्ड के विरोध स्वरूप अपना 'सर' का खिताब लौटाते हुए वाइसराय को जो पत्र लिखा वह भी ब्रिटिश समाचार पत्रों ने छापना उचित नहीं समझा। पर लॉर्ड माण्टेग्यू ने पार्लियामेंट में जब घोषणा की कि 'सर रवीन्द्रनाथ को दिया गया खिताब वापिस नहीं लिया गया है' तो यह समाचार ब्रिटिश समाचार पत्रों में अवश्य छपा। 'डेली टेलीग्राफ' ने तो व्यंग्यपूर्वक यह भी लिखा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अँग्रेज़ी प्रकाशक मेकमिलन्स उनके नाम के साथ अभी भी 'सर' छाप रहे हैं। १९४१ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मृत्यु पर ब्रिटिश समाचार पत्रों ने जो कुछ लिखा उससे जान पड़ता है मानो उनके सिर पर

से एक बहुत बड़ा भारी बोझ हट गया है। एक समाचार पत्र ने उनके मृत्यु लेख में लिखा कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को इस बात के लिए मनाने की कोशिश की गई थी कि वे अपने 'सर' के खिताब को वापिस करने के निर्णय पर पुनर्विचार करें।

'द टाइम्स' ने हाउस ऑफ़ कॉमन्स की कार्यवाही का उल्लेख करते हुए लिखा कि अंडर सेक्रेटरी फ़ॉर इंडिया ने यह माना था कि उनकी पुस्तक 'रूस के पत्र' के अनुवाद में एक पूरे परिच्छेद में तथ्यों को जानबूझकर तोड़ा-मरोड़ा गया था जिससे भारत में ब्रिटिश शासन की निंदा हो। इस प्रकार तथ्यों को तोड़े-मरोड़े जाने और तरह-तरह के आरोपों के बावज़ूद अधिकांश समाचार पत्रों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्बंध में प्राय: प्रशंसात्मक लेख ही छपते रहे। १९२१ में छपे एक समाचार से पता चलता है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लंदन से पेरिस की पहली हवाई यात्रा का पूरा खर्च चेकोस्लोवाकिया की सरकार ने दिया था।

जनसंहार की प्रतिक्रिया

रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस हत्याकाण्ड का मुखर विरोध किया और विरोध स्वरूप अपनी 'नाइटहुड' की उपाधि को वापस कर दिया था। आज़ादी का सपना ऐसी भयावह घटना के बाद भी पस्त नहीं हुआ। इस घटना के बाद आज़ादी हासिल करने की इच्छा और ज़ोर से उफन पड़ी। यद्यपि उन दिनों संचार के साधन कम थे, फिर भी यह समाचार पूरे देश में आग की तरह फैल गया। 'आज़ादी का सपना' पंजाब ही नहीं, पूरे देश के बच्चे-बच्चे के सिर पर चढ़ कर बोलने लगा। उस दौरान हज़ारों भारतीयों ने जलियाँवाला बाग़ की मिट्टी से माथे पर तिलक लगाकर देश को आज़ाद कराने का दृढ़ संकल्प लिया।

रबीन्द्रनाथ टैगोर और महात्मा गाँधी

टैगोर के गीतांजलि (१९१०) समेत बांग्ला काव्य संग्रहालयों से ली गई कविताओं के अँग्रेज़ी गद्यानुवाद की इस पुस्तक की डब्ल्यू.बी.यीट्स और आंद्रे जीद ने प्रशंसा की और इसके लिए टैगोर को १९१३ में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

विदेशी यात्रा

१९१२ में टैगोर ने लम्बी अवधि भारत से बाहर बिताई, वह यूरोप, अमेरिका और पूर्वी एशिया के देशों में व्याख्यान देते व काव्य पाठ करते रहे और भारत की स्वतंत्रता के मुखर प्रवक्ता बन गए। हालाँकि टैगोर के उपन्यास उनकी कविताओं और कहानियों जैसे असाधारण नहीं हैं, लेकिन वह भी उल्लेखनीय है। इनमें सबसे ज़्यादा लोकप्रिय है गोरा (१९९०) और घरे-बाइरे (१९१६; घर और बाहर), १९२० के दशक के उत्तरार्ध में टैगोर ने चित्रकारी शुरू की और कुछ ऐसे चित्र बनाए, जिन्होंने उन्हें समकालीन अग्रणी भारतीय कलाकारों में स्थापित कर दिया।

मृत्यु

भारत के राष्ट्रगान के प्रसिद्ध रचयिता रबीन्द्रनाथ ठाकुर की मृत्यु ७ अगस्त, १९४१ को कोलकाता में हुई थी।

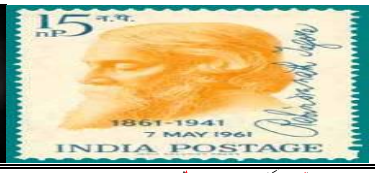

मातृ-दिवस

डॉ. ओम गुप्ता

माँ से ममता शब्द बना, माँ ममता का रूप।
माँ जैसा दूजा नहीं, तेरा दिव्य स्वरूप॥
कर लें माँ को याद हम, मदर्स-डे आया आज।
किरपा जिसकी से हुए, सफल हमारे काज॥
मेरी हर साँस तेरी माता, हर धड़कन में तेरा वास ।
शत-शत वन्दन करते जल थल वायु अग्नि आकाश॥
हो नतमस्तक मैं वंदन करूँ, पूजनीय हे मात।
कृपा आपकी बनी रहे, प्रातः शाम दिन-रात॥
हर पल पाला जिसने हमको, करें याद हर रोज।
'ओम' की ॐ से प्रार्थना, कृपा करें माँ और ॐ॥

एक उधार बाकी है

भावना सक्सैना

पाँच बजते ही सुजीत सौम्या को दफ्तर से लेने आ जाते हैं, इस छोटे से शहर में सार्वजनिक यातायात सुविधाएँ अच्छी नहीं हैं। कुछ छोटी बसें नियत समय पर चलती हैं लेकिन पके ताँबे से रंग के और कई तो एकदम रात्रि के अंधकार जैसे बड़े डील-डौल वाले क्रिओल लोगों के साथ सफर करने के विचार से ही घबराहट होती है, तो सौम्या के लिए दो ही रास्ते बचते हैं - या तो पति का इंतज़ार करो या ग्यारह नम्बर की बस पकड़ कर निकल चलो। यूँ घर बहुत दूर भी नहीं हैं लेकिन इस देश में पैदल चलने का रिवाज ही नहीं हैं। एक-आध बार निकली भी तो कोई न कोई परिचित रास्ते में टकरा गया और घर तक छोड़ गया, या फिर प्रश्नवाचक नज़रों से बचती घर आ भी गयी तो लगता था सुजीत नाराज हो गए, सो बहुत दिन से पैदल चलने का विचार ही त्याग दिया था। आज कुछ तो मौसम खुशगवार था और कुछ अंदर की बेचैनी, दफ्तर की फाइलें और जीवन के उतार चढ़ाव अति में हो जाने पर उसे कई बार ताज़ी हवा की आवश्यकता अनुभव होती है और उसका सबसे बेहतरीन तरीका है एक लम्बी पदयात्रा। घर फोन किया तो पता चला सुजीत अभी अध्ययन कक्ष में ही हैं। नौकरानी से कुछ न कहने को कह वह बैग उठाकर निकल पड़ी थी। पाँच बजे भी धूप इस कदर तेज थी कि लगता था जेठ की दोपहर हो, घर पश्चिम की ओर था तो सूरज सामने से आँखों में चुभ रहा था, रास्ते के इस किनारे कोई छायादार पेड़ भी नहीं थे और बीच का चौड़ा नाला सड़क पार करने की अनुमति भी नहीं देता था। सोचा वापस मुड़े पर अंदर के जंजाल से मुक्ति का प्रलोभन धूप से होने वाले कष्ट से कहीं अधिक था, एक बार चल पड़ी तो चल पड़ी, कदम लौटाने वालों में वैसे भी वह नहीं थी। चलते-चलते, न जाने क्यूँ, शायद छाया के मोह में मुड़ गयी और कब्रिस्तान के बगल वाले रास्ते पर चल पड़ी। मुख्य सड़क से कटती उस गली को अक्सर देखा था, जानती थी वह घर के पास ही निकलती है, पर मुड़ी उस पर पहली बार ही थी। ऐसा लगा मानो कोई खींचे ले जा रहा हो, गेट हल्का सा खुला देख सोचा आज अंदर भी चक्कर लगा लिया जाए लेकिन उस में निचली ओर सिकड़ी से एक ताला बँधा था। उस शांत निर्जन स्थान को देख वहाँ रुकने का मन हो आया और गेट के बाहर ही पड़े बेंचनुमा पत्थर पर टिक गयी, विचारों में डूबती-उतराती.....देखो तो कैसी शांति व्याप्त है! यहाँ आते ही एक डीलर ने समीप ही एक घर दिखाया था जिसकी बाल्कनी से पूरा कब्रिस्तान दिखता था, सब ने मना कर दिया, सुबह उठते ही यह नज़ारा देखोगी! और न चाहते हुए भी वह घर छोड़ दिया गया । आज अनायास ही मन में प्रश्न उठ आया – भला इन सुप्त आत्माओं से काहे का डर? डरना तो जीवात्माओं से चाहिए, ये बेचारे तो शांत सोये पड़े हैं। हर छल कपट से दूर, रागद्वेष से परे! जीवन की यही परिणति है तो क्यूँ इतनी आपाधापी है, क्यूँ इंसान जीवन-मूल्यों के ह्रास की ओर अग्रसर है, विश्व के लगभग हर कोने में दंगे भड़क रहे हैं, टेलीविज़न पर समाचार चैनल लगाने की इच्छा ही नहीं होती, सुखद समाचारों की कमी होती जा रही है। जिसे देखो दूसरे को सीढ़ी बनाकर ऊपर चढ़ना चाहता है।

इन्हीं सब विचारों में खोयी थी... कि नजर पड़ी एक दुबली पतली लड़की पर जो शायद पहले से वहाँ थी और एक कब्र के आसपास की ज़मीन साफ कर रही थी; छोटी सी, अन्य कब्रों की अपेक्षा बहुत साधारण

किन्तु उसके चारों ओर बहुत करीने से रंग बिरंगे फूलों की क्यारियाँ सजाई गईं थीं और वह क्यारियों में गिरी पत्तियों को एक-एक कर चुन रही थी, शांत, सौम्य अपने में खोई हुई, मानो कोई साधना कर रही हो, चेहरा बहुत स्पष्ट नहीं दिख रहा था पर एक तरल उदासी पूरे शरीर को लपेटे हुए थी। गेट के ताले को देखा वह अब भी यूँ ही लटका हुआ था। फिर यह अंदर कैसे पहुँची? शायद कोई दूसरा द्वार होगा। कब्र कुछ पुरानी ही दिख रही थी और उस नवयौवना का इस समय वहाँ होना किसी अचम्भे से कम नहीं था, अमूमन लोग रविवार को वहाँ मोमबत्ती जलाने या फूल चढ़ाने आ जाया करते हैं, या फिर बरसी पर.....रहस्यमयी सी उस युवती को कुछ समय तक देखती रही, दोनों अपने से अधिक शायद दूसरे में तल्लीन!

अचानक घड़ी पर नजर पड़ी और वह झटके से उठकर चलने लगी, सुजीत के उठने से पहले पहुँच जाये तो अच्छा है। आज तो फोन भी नहीं था साथ में, बच्चे भी इंतजार कर रहे होंगे।

घर पहुँच कर दैनंदिन कार्यों में लग गयी पर मस्तिष्क पर उस युवती की तरल उदासी छाई रही। देर रात तक सोचती रही, शायद उसका कोई परिजन वहाँ सोया होगा। कितनी अजीब बात है कि कितनी बार इंसान जीवन भर किसी के पास रहते हुए उससे दूर रहता है और एक रोज़ जब वह दूर हो जाता है तो उसकी कमी इस तरह खलती है कि सब अर्थहीन लगता है। अगले कुछ दिन वह उसके मस्तिष्क में बनी रही, एक दिन तो सुजीत ने मज़ाक में कह दिया "बच्चों! लगता है उस दिन माँ कब्रिस्तान से किसी को साथ ले आई है" पर उसकी मुख मुद्रा देख आगे कुछ न कहा। लेकिन सच्चाई यही थी की वह युवती एक रहस्य की तरह उसके मन पर छाई हुई थी। न जाने क्यूँ चाह कर भी वह उसे भूल नहीं पा रही थी। परिवार, प्रेम, बंधन सभी तो हैं इस देश में फिर भी सब बड़ा असंपृक्त हैं, मानों जीवन जी कर अपना कर्तव्य निर्वहन कर रहे हों, स्व के व मित्रों के प्रति कुछ ऊष्मा दिखाई भी पड़े; परिवार नाम की व्यवस्था से लोग कम खुश दिखते हैं।

आखिर अगले सप्ताह में फिर अवसर मिल गया, सुजीत को दफ्तर से देर से आना था और वह पाँच बजते ही चल पड़ी उसी राह पर, सोच रही थी जाने वह वहाँ होगी या न होगी? लेकिन उसने उसे जिस मुद्रा में छोड़ा था ठीक वैसे ही पाया, मानो वह उधर से हटी ही नहीं हो....मानो बीच के दिन रहे ही न हों; एक-एक पत्ती चुन कर एक छोटे से थैले में एकत्र करते। सौम्या की रीढ़ में एक सिहरन दौड़ गयी, नहीं वह कोई प्रेत नहीं हाड़-माँस की युवती थी। उसने कब्र के इर्द-गिर्द पड़े पत्ते और फूल चुनने के बाद एक कपड़े से पत्थर पोंछा और अपने पर्स से मोमबत्ती निकाल कर जलायी; कुछ देर आँख मूँद प्रणाम किया और चल दी।

फिर यह रोज़ का सिलसिला सा बन गया, पाँच बजते ही सौम्या के पाँव अपने आप उस स्थान की ओर बढ़ जाते, और वह थोड़ी दूर से ही उसे देख कर आगे बढ़ जाती थी। एक रोज़ विचारों में जरा-सा खो गयी थी कि पीछे से आवाज़ आई – "नमस्ते, मैं ग्रेस हूँ, आप कई रोज़ से इधर आ रहीं हैं, कुछ जानना चाहती है शायद?"

सौम्या सकपका गयी, जैसे चोरी पकड़ी गयी हो - " नहीं बस तुम्हारी तन्मयता देखकर अच्छा लगता है। शायद वहाँ तुम्हारे परिवार का कोई...."

"नहीं वह मेरे कुछ भी नहीं, कोई रिश्ता नाता नहीं, पर... एक उधार बाकी है।"

“उधार!”

सुंदर गौरवर्णा की आँखों से दो मोटे-मोटे आँसू ढुलक गए। "जी एक उधार! खुशी का, उस खुशी का जो मेरी माँ को कभी नहीं मिली थी लेकिन इस व्यक्ति ने मेरी माँ के अंतिम दिनों में उसे वह सारा दुलार दिया जिसके लिए वह जीवन भर तरसती रही थी... और तभी से वह मेरे लिए देव समान हो गए।" वह बोलती जा रही थी, जैसे बरसों पुरानी पहचान हो ..."हम दो बहनें थी, मैं छोटी हूँ और लगभग 6 बरस की रही होऊँगी.... बहुत कटु यादें हैं, एक शख्स – जो हमारा पिता कहा जाता था....अब सोचती हूँ तो लगता है किसी भी रूप से इस लायक न था, बस नानी की ज़िद थी माँ को हिन्दुस्तानी परिवार में ही ब्याहने की, उनके गाँव का था, तो माँ को ब्याह दिया उसके साथ। हमारा जन्म उसके लिए महज एक हादसा था, हर दिन एक नई कहानी तो होती थी लेकिन एक कहानी जो सदा हरी थी वह थी नाना से पैसों की माँग! आखिर एक दिन नाना के सब्र का बाँध टूट गया और वह हाथ पकड़ कर हम तीनों को अपने घर ले आए । पिता नाम के उस शख्स को तब तक हमारी याद नहीं आई जब तक वह अशक्त हो अस्पताल में भर्ती हुआ। कहने में अच्छा तो नहीं लगता लेकिन शायद यह उसके कर्मों की गति थी। मुझे उस से बिलकुल सम्वेदना नहीं थी। उसकी मृत्यु पर भी कहीं कुछ नहीं छू गया, निर्वैयक्तिक तौर पर उसकी क्रिया में शामिल अवश्य हुई थी पर बस उतना ही।

उसके चेहरे के दर्द को सौम्या देख रही थी....

"और यह शख्स हमारी जाति का भी नहीं था, एक डच मूल का व्यक्ति था जिससे माँ की मृत्यु के कुछ वर्षों पहले जान पहचान हुई। लगभग 60 वर्ष की मेरी माँ को जीवन व्यतीत होने पर एक साथी मिला। हमने कई बार माँ से पूछा कि उन्होंने दोबारा विवाह क्यों नहीं किया और उनका उत्तर होता था कि वह अपनी बच्चियों को किसी कठिनाई में नहीं डालना चाहती थी। बचपन के रहस्य युवावस्था में और युवावस्था के रहस्य प्रौढ़ावस्था में सरलता से खुलते चले जाते हैं। जब तक यह सब हमारी समझ में आया माँ की उम्र सुबह से निकली चिड़िया-सी थक कर साँझ की देहरी पर थी। आप भी सोच रही होंगी कि उनके विवाह से हमें क्या मुश्किल होती, दरअसल यह समाज जो कि उन गिरमिटिया मजदूरों के वंशज हैं जो सुख सम्पन्नता की खोज में अनुबंध पर इस देश पहुँचे थे। ये अपने धर्म, संस्कृति को तो सहेजते रहे हैं; लेकिन समय की मार और दैहिक मानवी आवश्यकताओं, असंयम से उपजी पशुता से नहीं बच पाये। एक समय में यहाँ महिलाएँ कम भी थीं और गोरे बागान मैनेजरों द्वारा शोषित भी थीं, वहाँ से शुरू हुई पाशविकता आज तक इस समाज को जकड़े है, न जाने कितनी युवतियाँ कितनी महिलाएँ इसका शिकार हुई हैं किन्तु इस समाज के भय ने उन्हें गूँगा बना दिया है। दूसरे विवाह में पत्नी के साथ दो युवा पुत्रियाँ किसी भी पुरुष के लिए एक लौटरी के समान थीं और हमें बचाते-बचाते माँ स्वयं को जलाती गयी। भारत से दूर पश्चिम में रहकर भी हमारा समाज पश्चिम का नहीं हो पाया है, जूझ रहा है आधुनिकता और संस्कारों के बीच! वे हिन्दुस्तानी संस्कार जो हमारे पूर्वज उठा लाये थे आज भी कूट-कूट कर तो भरे जाते हैं अपने बच्चों में लेकिन उन संस्कारों का और इस समाज का तालमेल किस तरह बैठाया जाये इसकी कोई तरकीब नहीं बताता। और यही एक कारण है हमारे समाज में बढ़ती आत्महत्याओं का। हम ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ समाज व्यक्ति से ऊपर है और समाज के नियम हैं और इनसे इतर व्यक्ति की खुशी कोई मायने नहीं रखती, पर कुछ उधार सदैव रह जाते है जो इस जीवन में तो क्या आने वाले जीवन में भी चुकाए नहीं जा सकते।

साठ वर्ष की मेरी माँ हृदयाघात के पश्चात् चलने-फिरने से लाचार बस बाल्कनी पर बैठी आते-जाते मुसाफिरों को ताकती दिन गुज़ार रही थी। कई बार गुमान होता कि वह किसी को भी नहीं देख रही बस शून्य में ताक रही है मानो किसी के इंतज़ार में। मैं उसे देख घबरा जाती थी, बेबसी से दम घुटता था, इतना लाचार

बेबस कभी महसूस नहीं किया था। यह श्रीमान कॉलोनी में नए आए थे, सुबह-शाम सैर पर जाना शुरू किया था तो आते-जाते बाल्कनी पर बैठी मेरी माँ को हाथ हिला दिया करते थे। धीरे-धीरे माँ ने प्रतिक्रिया देनी आरम्भ की, एक ऊँगली व फिर हाथ हिला, और एक रोज़ दफ्तर से लौटते हुए मैंने पाया कि श्रीमान बस गुजरे ही थे कि माँ के होंठ हल्की-सी स्मित में ढल गए। स्वयं को रोक न सकी और उन्हें चाय के लिए आमंत्रित कर लिया। माँ की स्मित कुछ और गहराई, और फिर हमने निर्णय किया कि शाम की चाय वह हमारे साथ ही पिए और इस तरह शुरू हुआ यह सिलसिला। मेरे दफ्तर से घर पहुँचने से पहले जोस माँ के पास पहुँच जाते और धीरे-धीरे माँ के स्वास्थ्य में होने वाले सुधार से डाक्टर तक अचम्भित हो गए। जोस हमेशा कहते "सी माई मैजिक".....सच उस व्यक्ति में मैजिक था! वह मेरी माँ को बारह बरस और जिला गया। एक बार कौतूहलवश पूछ लिया था उसके परिवार के बारे में, वह मुस्कुरा कर बोले – "जो मेरे कारण मुस्कुरा पाएँ या जिनके कारण मैं मुस्कुरा पाऊँ वही है मेरा परिवार, और वर्तमान में इस दायरे में और कोई हो न हो तुम अवश्य हो मेरी गुड़िया".....अपने आँसू नहीं रोक पायी, कोमल शब्दों की आदत नहीं थी मुझे; किन्तु ऐसा कहने में भी जोस की आँखों में जैसे एक सर्द शाम ठहर गयी, मैं उन्हें उदास नहीं देखना चाहती थी इसलिए फिर कभी इस बारे में बात नहीं की। और आज तक उनके बारे में बस यही जानती हूँ कि हम उनके साथ होने से मुसकुराते थे। पहचान के कुछ समय बाद एक बार अकस्मात उन्हें अंकल पुकार उठी तो उन्होने तुरंत कहा ग्रेस मुझे किसी भी रिश्ते में मत बाँधो; मैं जोस हूँ मुझे बस जोस रहने दो, मैं रिश्तों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाऊँगा, मुझे इस बोझ से मत लादो! और तब से एक भावनात्मक परिवार की तरह हम हर शाम चाय पर मिलते रहे। चार वर्ष पूर्व मेरी माँ के देहांत होने तक ऐसा ही चलता रहा। फिर धीरे-धीरे मैं अपने कामों में उलझती गयी, यदा-कदा मुलाक़ात होती थी, किन्तु शाम की चाय का सिलसिला बंद हो गया। मैंने नौकरी बदली और दफ्तर घर से दूर होने के कारण पहले से भी अधिक व्यस्त हो गयी, पहले कुछ सप्ताह फोन पर बात हो जाती थी किन्तु दायित्व बढ़ने के कारण बहुत समय तक जोस का खयाल न आया.....फिर न जाने क्यूँ एक दिन बड़ी बेचैनी हुई, कुछ पुरानी तस्वीरें देख रही थी और उन्हीं में बीच में आ गयी जोस की और माँ की तस्वीर जो शायद मैंने चुपके से कभी ली थी दोनों बच्चों की भाँति निश्छल बैठे हुए शांत; कोई कुछ न कहता हुआ किन्तु जीवन से तृप्त, और अचानक मेरा मन जोस से मिलने को हुआ, तो मैंने उन्हें फोन किया। कई घंटी जाने के बाद बहुत क्षीण-सी आवाज़ आई, हेलो..... मन भीग गया, दो चार शब्दों में बात पूरी कर मैं दौड़ गयी उनके घर! शायद दो माह बाद देख रही होऊँगी; किन्तु लगता था सदियाँ गुज़र गई हैं, हमेशा ज़िंदादिल जोस बमुश्किल अपने पलंग से उठ पा रहे थे किन्तु फिर भी मेरा स्वागत एक मुस्कान के साथ किया, किसी गिले शिकवे से नहीं; मैं असीम ग्लानि से भरी यह भी न कह पायी कि 'मुझे बुलाया क्यों नहीं' मैं खुद ही तो भूल गयी थी; तुरंत डॉक्टर को बुलाया और डॉक्टर ने आते ही फैसला किया उन्हें अस्पताल में भर्ती करना होगा! शरीर में रक्ताल्पता थी और उस दिन पहली बार जाना कि वह हृदय के भी मरीज हैं। विश्वास ही नहीं हुआ, इतना खुशदिल व्यक्ति भी हृदयरोगी हो सकता है। सप्ताह भर में ही वह अलविदा कह गए और तब से अब तक मैं रोज़ उनके पास आती हूँ, अपनी अनदेखी का प्रायश्चित करने। जोस ने तो कुछ न कहा लेकिन मैं उनके ऋण से कभी उऋण न हो पाऊँगी। वह उधार बाकी रहेगा!!!... जीवन पर्यंत।"

तुम्हारी तलाश

डॉ. अजय श्रीवास्तव

धवल चाँदनी में माँ का आँचल नहीं
माँ के आँचल में तो धवल चाँदनी है.

सारे किताबी ज्ञान में माँ की बातें नहीं
माँ की बातों में तो समूचा किताबी ज्ञान है.

घर-आँगन में उनका साया अब नहीं
उनके साये में तो सारा घर-आँगन है.

सावन की फुहारों में प्रेमिका की कशिश नहीं
प्रेमिका की कशिश में तो सावनी फुहार है.

दरिया के ठण्डे जल में उनका प्यार नहीं
उनके प्यार में तो दरिया का ठण्डा जल है.

बाँहें फैलाये आसमान में दोस्त का सम्बल नहीं
दोस्त के सम्बल में तो समूचा आसमान है.

राजमहलों में संत की विराटता नहीं
संत की विराटता में तो सारे महल हैं.

मौसम के आने से वो नहीं बदले
उनके आने से तो मौसम बदल गया.

ज्ञान से मानव क्रियमान बनता है

डॉ. अशोक आर्य

हम सदा अभय रहें, हमारे में किसी प्रकार का उद्वेग न हो, किसी प्रकार का भय न हो । हमारे यज्ञ में कभी रुकावट न आवे । हम सदा अपने ज्ञान, अपनी भक्ति तथा अपने कर्म का सदा विस्तार करें । हम जो ज्ञान पूर्वक कर्म करते हैं, वह ही भक्ति है तथा ज्ञान हम उसे ही मानते हैं, जो हमें सदा किसी न किसी क्रिया में लगाये रखते है। यजुर्वेद के इस प्रथम अध्याय का २३वाँ मन्त्र हमें यह सन्देश इन शब्दों में दे रहा है -

मा भेर्मा सविक्थाऽअतमेरुर्यग्योऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात त्रिताय
त्वा द्विताय त्वैक्ताय त्वा ॥ यजु.१.२३ ॥

पूर्व मन्त्र में यह बताया गया है कि जिस व्यक्ति का सविता देव के द्वारा अच्छी व भली प्रकार से परिपाक हो जाता है, ऐसा व्यक्ति सदा ही किसी प्रकार से भी भयभीत नहीं होता । वह सदा निर्भय ही रहता है। ऐसे व्यक्ति में देवीय सम्पति अर्थात देवीय गुणों का विकास होता है, विस्तार होता है । यह विकास अभय अर्थात भय रहित होने से ही होता है । इस लिये यह मन्त्र इस बात को ही आगे बढाते हुए तीन बिन्दुओं पर विचार देते हुए उपदेश कर रहा है कि -

१. प्रभु भक्त को कभी भय नही होता -

मन्त्र उपदेश कर रहा है कि हे प्राणी! तू डर मत। तुझे किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिये । तू प्रभु से डरने के कारण सदा प्रभु के आदेश का पालन करता है, प्रभु की शरण में रहता है। जो प्रभु की शरण में रहता है, प्रभु के आदेशों का पालन करता है, वह संसार में सदा भय रहित हो कर विचरण करता है । अन्य किसी भी सांसारिक प्राणी से कभी भयभीत नहीं होता ।

इसके उलट जो व्यक्ति उस परमपिता से कभी भय नही खाता, कभी भयभीत नहीं होता, ऐसा व्यक्ति संसार के सब प्राणियों से, सब अवस्था में भीरु ही बना रहता है, डरपोक ही बना रहता है, सदा सब से ही भयभीत रहता है, जबकि प्रभु से डरने वाला सदा निडर ही रहता है । इसलिए मन्त्र कह रहा है कि हे प्राणी ! प्रभु से लगन लगा, किसी प्रकार के उद्वेग से तू डर मत, कम्पित मत हो, भयभीत न हो । तू ठीक मार्ग पर, सुपथ पर चलने वाला है। सुपथ पर जाने वाले को कभी किसी प्रकार का भय, कम्पन नहीं होता ।

२. अनवरत यज्ञ करें -

हे प्राणी, तू सच्चा प्रभु भक्त होने के कारण सदा यज्ञ करने में लगा रहता है किन्तु इस बात का स्मरण बनाये रखना कि तेरा यह यज्ञ कभी श्रान्त न हो, कभी बाधित न हो, कभी इस में रुकावट न आने पावे । इसे अनवरत ही करते रहना । इस सब का भाव यह है कि तू सदा यज्ञ करने वाला है तथा तेरी यह यज्ञीय भावना सदा बनी रहे, निरन्तर यज्ञ करने की भावना तेरे में बनी रहे । तू सदा ऐसा यत्न कर कि तेरी यह भावना कभी दूर न हो । इस सब का भाव यह ही है कि हम सदा यज्ञ करते रहें, परोपकार करते रहें, दूसरों की सहायता करते रहें। हमारी इस अभिरुचि में कोई कमी न आवे। कभी कोई समय ऐसा न आवे कि हम इस यज्ञीय परम्परा को बाधित कर कुछ और ही करने लगें ।

३. प्रभु यग्यी व्यक्ति को चाहता है -

हम यह जो यज्ञ करते हैं, इस कारण हम प्रभु की सच्ची सन्तान हैं। मन्त्र कह रहा है कि प्रभु यज्ञीय को ही पसन्द करते हैं। वह यज्ञीय व्यक्ति को पुत्रवत् प्रेम करते हैं। वह नहीं चाहते कि उसकी सन्तान कभी उत्तम कर्म करते-करते थक जावें। प्रभु अपनी सन्तान को सदा बिना थके कर्म करते हुए देखना चाहते हैं। निरन्तर कर्म में लिप्त रहना चाहते हैं। अकर्मा तो कभी होता देख ही नहीं सकते। इस के साथ ही मन्त्र यह भी कहता है कि जो व्यक्ति सदा कर्म करते हुए अपने सब यज्ञीय कार्यों को सम्पन्न करते हैं, ऐसे व्यक्तियों का सम्बन्ध परम पिता परमात्मा से सदा बना रहता है। वह कभी उस पिता से दूर नहीं होते। सदा प्रभु से जुडे रहते हैं। कभी थकते नहीं, कभी विचलित नहीं होते, कभी भयभीत नहीं होते। उनकी निरन्तरता कभी टूटती नहीं। जो लोग प्रभु के नहीं केवल प्रकृति के ही उपासक होते हैं, वह कुछ ही समय में थक जाते हैं, श्रान्त हो जाते हैं। ऐसे लोगों का जीवन विलासिता से भरा होता है। ऐसे लोग काम, क्रोध, जूआ, नशा आदि के शिकार होने के कारण उनका शरीर जल्दी ही क्षीण हो जाता है, जल्दी ही कमजोर हो कर थक जाता है। अनेक प्रकार के रोग उन्हें घेर लेते हैं तथा अल्पायु हो जाते हैं।

मन्त्र आगे कह रहा है कि मानव को ज्ञान का प्रधान होना चाहिये, वह कर्म में भी कभी फीछे न रहे तथा प्रभु भक्ति से भी कभी मुख न मोड़े। इस लिए ही मन्त्र उपदेश करते हुए कह रहा है कि प्रभु अपने भक्तों को, अपने पुत्रों को, अपनी उपासना करने वालों के ज्ञान, अपने कर्म तथा उनकी उपासना में कभी कमीं नहीं आने देते अपितु उन्हें अपने यह सब गुण बढाने के लिए प्ररित करते हैं। वह प्राणी के इन गुणों को बढाने के लिए सदा उसे उत्साहित करते रहते हैं। इस का कारण है कि जो भक्ति ज्ञान सहित की जावे, वह भक्ति ही भक्ति कहलाती है। इसे ही भक्ति कहते हैं। इसलिए मन्त्र यह ही उपदेश करता है कि तेरे ज्ञान तथा कर्म में निरन्तर विस्तार होता रहे, निरन्तर उन्नति होती रहे, निरन्तर आगे बढता रहे।

मन्त्र यह भी कहता है कि हमारे जितने भी आवश्यक कर्म हैं, उन सब की प्रेरणा का स्रोत, उन सब की प्रेरणा का केन्द्र, उन सब की प्रेरणा का आधार ज्ञान ही होता है। इसलिए इस मन्त्र के माध्यम से परम पिता परमात्मा उपदेश करते हुए कह रहे हैं कि मैं तुझे ज्ञान के बढाने की ओर प्रेरित करता हूँ, मैं तुझे अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाने के लिए आह्वान करता हूँ। यह तो सब जानते हैं कि ब्रह्मज्ञानियों में भी जो क्रियमान होता है, वह ही उत्तम माना जाता है, श्रेष्ट माना जाता है। इस लिए हे प्राणी! तू निरन्तर स्वाध्याय कर, निरन्तर ऐसे कर्म कर, निरन्तर एसे कार्य कर कि जिससे तेरे ज्ञान का विस्तार होता चला जावे, कि जिससे तेरे ज्ञान को बढावा मिले।

प्रख्यात कवि, लेखक आदरणीय
बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय जी को
सादर श्रद्धांजलि – सम्पादक
"२७ जून १८३८ - ८ अप्रैल १८९४"

धरती है बँगाल की....

मनोजकुमार शुक्ल "मनोज"

धरती है बँगाल की, जग जाहिर हैं काम।
राष्ट्रभक्ति में अग्रणी, महापुरुषों के नाम।।
बंकिम चन्द्र चटर्जी, रवीन्द्र नाथ टैगोर।
विपिनचन्द्र, दयानंदजी, शरदचन्द्र सिरमोर।।
रवीन्द्रनाथ टैगोर के, गुरुवर बंकिमचन्द्र।
दुर्गेशनंदनी का सृजन, बचपन से थे चन्द्र।।
शिष्य विवेकानंद को, रही ज्ञान की प्यास।
रामकृष्ण परमहंस ने, पहुँचाया था पास।।
अट्ठारह अड़तीस में, धनी विप्र परिवार।
माता दुर्गा देवि थीं, उनकी पालनहार।।

कंथलपारा गाँव में, जादब चन्द्र महान।
उनके घर पैदा हुयी, यह अद्भुत संतान।।
पाकर दोनों खुश हुये, ईश्वर का वरदान।
पढ़ा लिखा पाला उसे, बना दिया विद्वान।।
भारतदर्शन को पढ़ा, नीति शास्त्र का ज्ञान।
वेद और उपनिषद् का, अध्ययन औ संज्ञान।।
पत्रकार के रूप में, धाक जमाई साथ।
अँग्रेजी सरकार ने, पीटा अपना माथ।।
कपालकुंडला मृणालिनी, लेखन का संसार।
देवतत्व व धर्मतत्व, कृतियों का भंडार।।
उपन्यास व काव्य ने, उनको किया प्रसिद्ध।
कई विधाओं में लिखा, कलमकार थे सिद्ध।।
अँग्रजों के काल में, नहीं रहा उल्हास।
शोषण के उस दौर में, जुल्मों का इतिहास।।
आनंद मठ पुस्तक लिखी, चर्चित सारे देश।
बंकिम बाबू ने दिया, क्रांति भरा संदेश।।
वंदेमातरम् गीत तब, गूँजा बन जयगान।
आजादी के बाद भी, वही हमारी शान।।
पूरे जग में छा गया, उनका गीत महान।
आज अमर वे हो गये, सब करते गुणगान।।

लखनऊ में एक मौत

दिलीप कुमार सिंह

"माघ का महीना। समूचे उत्तर भारत में प्राणलेवा शीतलहरी, कहर बरपा रही थी। चरिंद-परिंद सभी की जिन्दगियाँ कुदरत के इस कहर से बेहाल थीं। लगता था कि लखनऊ शहर की रूमानियत और हलचल को गोमती से उठा कोहरा धीरे-धीरे लील रहा था। कई दिनों से सूर्य के दर्शन नहीं हुये थे, सो वक्त का अंदाजा लगाना मुश्किल हो रहा था। क्योंकि धुँध और कोहरा ही चहुँ ओर फैला था। गालिबन बाद दोपहर का वक्त रहा होगा। हालाँकि अँधेरा अभी हुआ न था मगर फिर भी लोगों ने दिया-बाती से घरों को रोशन कर दिया था। हाड़ कँपा देने वाली ठंड और बोझिल इंतजार ने उन तीनों का मन खट्टा कर दिया था। मूने, पंइया और बरसाती बड़ी बेचैनी से जोखन की प्रतीक्षा कर रहे थे। जो केलो की अन्त्येष्टि का सामान लेकर आने वाला था। वैसे वे सब साथ के ही पियक्कड़ थे, मगर केलो, जोखन का खास हमप्याला था। केलो काफी दिनों से जोखन को उधार दारू पिला रहा था। गाहे-ब-गाहे केलो नगदी से भी जोखन की मदद किया करता था। मगर नगदी के मुकाबले दारू की उधारी बहुत ज्यादा थी। ज्यादातर उधारियाँ जुबानी जमानत की ही थी जो केलो ने कल्लो मौसी को दी थी कि जोखन अगर दारू के कर्जे न चुका पाया, तो उसके कर्जे केलो चुकायेगा। केलो खुद को पहाड़ी राजपूत बताता था। जो जमानत के लिए अपनी मूँछो को ही पर्याप्त बताता था। तब कच्ची शराब बनाने और बेचने वाली कल्लो मौसी उसकी बड़ी-बड़ी और बेतरतीब मूँछो को ममतामयी दृष्टि से देखा करती थी, मगर अगले ही क्षण अपनी विधवा बहू कबरी पर केलो की आसक्ति को सोचकर क्रुद्ध भाव भंगिमायें बना लिया करती थी। मगर तब मन ही मन उसे इस बात की तसल्ली भी हुआ करती थी कि उसके न रह जाने पर कबरी को भूखों न मरना पड़ेगा, भई..... केलो है ना। मगर केलो ही न रहा। आज उसी दारू की भट्ठी के नजदीक औंधी पड़ी केलो की लाश के समीप कल्लो मौसी अकारण ही अपनी आँखो से बहते झर-झर आँसुओं को रोक नहीं पा रही थी। ये गम उधारी के डूब जाने के सबब था या सहारे के खोने की चिंता के जानिब, किसे पता? मौसी कभी केलो की लाश को देखती तो कभी कबरी को। कबरी, न तो केलो की लाश की तरफ देखती थी और न ही मौसी से नजरें मिलाने का साहस कर पा रही थी। वो सिर झुकाये, सिरके को हिला-डुला कर तल्लीनता से मिलाने का असफल प्रयत्न कर रही थी ताकि अगले दिन अच्छी, कच्ची शराब बन सके। हाथ काम पर था, नजरें नीची थी, दिल में रंज था कि कहीं दुख फट न पड़े। विलाप की चहुँ ओर चुगली हो सकती थी, सफाइयाँ देनी पड़ सकती थी कि किसी गैर मर्द के निधन पर वैधव्य का विलाप क्यों? वो भी कबरी द्वारा। जिसे उसका पति कोढ़िन समझता था और सफेदा (ल्यूकोडर्मा) के दाग के कारण पहले उसे चितकबरी कहा करता था जो कि पुकारने की सुविधा हेतु कबरी बन गया। वैसे उसका नाम लक्ष्मी था। उसका पति लल्लन गुजर गया था। करीब अठारह वर्ष पहले, मगर कबरी नाम उसका तभी से पड़ा था। अब तक खुद वो अपना नाम लक्ष्मी भूल चुकी थी। फिर ये दुख उस केलो की खातिर क्यों था, जिसने कि एक गैर-जिम्मेदार जीवन जिया था। खाये-पिये, मस्त....? कबरी को चाहने और उसके असरहीन विरोध के बावजूद उसे छूने से इसलिये घबराता था क्योंकि वो सफेदा को कोढ़ ही समझता था, जो कि कबरी को छूने से उसे भी हो सकता था। आखिर वो केलो भी तो इस दारू की ठेकी का एक सामान्य ग्राहक था। इस दारू की ठेकी पर हर किस्म के पियक्कड़ आते थे। शरीफ, बदमाश, चोर-दगाबाज से लेकर पंडा-पुजारी तक इस सस्ती दारू के तलबगार थे। कुछ यहीं पीते थे कुछ बँधवाकर ले जाते थे। गोमती तट पर बसी इन अनियोजित झुग्गियों में दारू बनाकर बेचना सरकार की नजरों में भले ही अवैध हो, मगर इस समाज में

इसे एक कुटीर उद्योग माना जाता था जो कि श्रम एवं पूँजी से संचालित होता था एवं जहाँ गुणवत्ता की गारण्टी देनी पड़ती थी। अचानक कबरी उठी, मौसी की मनोदशा को भाँपते हुये और बगैर उससे कुछ कहे वो घाट की तरफ चल दी। वहाँ उन तीनों ठिठुरते प्राणियों से उसने संयत स्वर में कहा "लाश कब तक रोके रहोगे, टेम हो रहा है। मौसी बिगड़ रही है।" प्रयक्षतः स्वर से रूखाई एवं उकताहट का इम्कान होता था मगर हकीकतन ये एक टीस भरा विलाप था "जा तन लोग, वा तन जाने।" वे तीनों अवधी में प्रचलित क्लासिक गालियाँ जोखन के लिये बकते हुये भट्ठी पर पहुँचे। वे मौसी की शक्ल देखकर ही उसकी नाराजगी जान चुके थे। उन्होंने दो अद्धे (शराब की आधी भरी बोतल) लिये। जिन्हें देते हुये मौसी बड़बड़ाई। मौसी की नाराजगी को कम करने के लिये दुख की इस घड़ी में भी पंइया खींसे निपोर कर बोला "माघ की ठंडी है। कलेजा तक ठिठुरा जाता है। मुर्दा पहुँचाने जा रहे हैं। हमें खुद मुर्दा नहीं होना है। लाओ एक-एक गिलास लगा लें। सब इस शीतलहरी से बचे रहेंगे।" मौसी टली नहीं। वो कुढ़ती, बड़बड़ाती और गरियाती रही। मगर कबरी जान चुकी थी कि बात चली है तो पिये बगैर ये लोग यहाँ से न हिलेंगे। और अगर ये लोग छिटक गये तो फिर इतने आदमियों को जोड़ना मुहाल हो जायेगा। तो फिर लाश की दुर्गति हो सकती है। जो उसे कतई गवारा न थी। वो मौसी की रजामंदी की परवाह किये बिना झट से गिलास ले आई। इस बार पीने के साथ खाने के लिये चना या चटनी की फरमाइश न हुई। बेशक उनमें स्वार्थ था मगर मौके की नजाकत भाँपते हुये मानवीय सम्वेदना उनमें भी जागी। अब तक पराया समझकर केलो की लाश को हिकारत से देखने वाले उसके साथियों ने शराब पीते ही उसे अपनेपन से देखना शुरू कर दिया। ये वही शराब है, जिस पर इल्जाम है कि ये इंसान को जानवर बना देती है। मगर यहाँ पशुता की स्वार्थ सिद्धि तजकर, शराब पाते ही उन पियक्कड़ों में मनुष्यत्व की संवेदनायें जागृत हो गयी थीं।

उन सभी ने थोड़ी-थोड़ी ही पी थी सो नशे का सवाल ही पैदा नहीं होता था। उनकी आँखों से आँसुओ की बूँदे शराब पीने के बाद ही टपकी थीं। ऐसे गमजदा हुये कि मानो पियक्कड़ केलो नहीं, बल्कि उनका कोई सगा, सम्बन्धी गुजर गया हो। जोखन अब तक न आया था। सो इंतजार बेमानी था। जोखन को श्राप देते हुये मूने ने कोई गंदी सी गाली दी, जिसका बरसाती ने समर्थन किया। पंइया ने बात आगे बढ़ाते हुये केलो के मानवता के महान गुणों का वर्णन करने की शुरूआत थी, ताकि उसकी मृत्यु महत्वपूर्ण बन सके। तब तक मौसी ने उन सभी को डपटा "टेम देखो टेम। बतकही बात में।" मौसी बखूबी जानती थी कि भले ही विद्युत शवदाह गृह में केलो की कर्माही होनी थी, खर्चा तो लगेगा ही। सो पहले से बुलाये गये टेम्पो चालक को मौसी ने सौ का तुड़ा-मुड़ा नोट देते हुये आँखो के इशारे से तत्काल प्रस्थान का आदेश दिया। मौसी ने कबरी को देखा तो कबरी सहम गयी। विधि विरुद्ध होने के बावजूद कबरी घर के अंदर से एक लोटे में गंगा जल ले आयी। भट्ठी से सटे पड़े केलो के हाथों को हटाकर भट्ठी से मृत शरीर की स्पर्शता समाप्त की और केलो के मुँह में गंगाजल डाल दिया। टेम्पो चालक और उन तीनों ने मिलकर जब केलो की अर्थी उठायी तो मौसी फफक-फफककर रो पड़ी। रोते-रोते उन्होंने कबरी से कहा "दुल्हिन ठाकुर के पाँव छू लेव। बहुत मरजादी पुरूष रहे, बड़ा पुण्य मिलेगा। राम इन्हें सरग में जगह देंय।" कबरी को दुख जरूर था। मगर स्त्रीत्व के भी अपने तर्क थे। लाज की बंदिशें थीं। सो चार बाहरी पुरूषों के समक्ष किसी गैर मर्द के पाँव छूना कबरी को गवारा न हुआ। क्योंकि बात का बतंगड बन सकता था। नियति अपना दाँव चल चुकी थी सो बतंगड़ को बात भी न बनने दिया गया। वैसे केलो के घरजमाई बनने में देर ही कितनी थी। प्रभावहीन विरोध के साथ मौन स्वीकृतयाँ भी थीं। केलो और कबरी उम्र के उस पड़ाव पर थे, जहाँ शारीरिक आकर्षण गौण हो चले थे। उन्हें एक-दूसरे के साथ का पूरा आसरा था, भले ही वे रहते दूर-दूर थे। मौसी भी एक हद तक निश्चिन्त हो चली थीं कि उनके बाद कबरी को भीख माँगकर गुजारा नहीं करना पड़ेगा क्योंकि पचास वर्ष के बाद की असहाय स्त्री इस बस्ती में किसी काम की न रह जाती थी। टेम्पो वाले की चीख ने उन दोनों महिलाओं की तन्द्रा भंग की और वे वर्तमान में लौट आयी, टेम्पो जा चुका था।

बर्फीली हवाओं से बचने के लिये किवाड़ बन्द कर लिये गये। जहाँ केलो का मृत शरीर पड़ा था उस स्थान को लीप कर नहाने का हुक्म कबरी को मौसी ने दिया। लीपने से पूर्व उस स्थान की मिट्टी को कबरी ने अपने मुँह और माँग पर रगड़ लिया फिर लीपा। बन्द किवाड़ों के पीछे विलाप पर पर्दा न था। वैधव्य के आँसुओं से उसका चेहरा तर हो गया था। वो नहाने गयी तो पानी से धुलने के बजाय झाड़-पोंछकर चेहरे और माँग की मिट्टी को एक कपड़े में बाँध लिया। इस मिट्टी की पोटली को सँभालकर उन आभूषणों के साथ संदूक में रख दिया, जो उसने लल्लन की विधवा होने के बाद आज तक नहीं पहने थे। आभूषण और मिट्टी की पोटलियाँ उसके जीवन में आये दो पुरूषों की निशानियाँ थीं। अबला नारी फूट-फूट कर रोने लगी तो मौसी ने उसे ढाढ़स बँधाया। दोनों बड़ी देर तक आलिंगन बद्ध होकर फूट-फूटकर, बिलख-बिलखकर और हिचकियाँ लेते हुये रोती रहीं। वे जानती थीं कि इन आँसुओं का बहना मुफीद है, जिन्दा रहने के लिये। उधर वे तीनों गरियाते-श्रापते कोसते भैंसाकुण्ड पहुँचे, जिनका केन्द्र बिन्दु जोखन ही था। रास्ते में टेम्पों पर लटककर बैठा होने के कारण ठोकर लगने से बरसाती के पाँव में चोट भी लग गयी थी। सो वो रास्ते भर कलपता-कराहता रहा और केलो को बद्दुआयें भी देता रहा। भैंसाकुण्ड पर भी बहुत भीड़ थी। श्मशान में इतनी बड़ी भीड़ कौतूहल का सबब थी। तमाम आला अफसरान और पुलिस की गारद भी मौजूद थी, लिखा-पढ़ी चल रही थी। बयान न सिर्फ लिये जा रहे थे बल्कि लिखे और रिकार्ड भी किया जा रहे थे। खबरनवीस, टी.वी. चैनलों के नुमाइंदे, गमजदा परिवार वाले मातम पुर्सी के तमाशबीनों की खासी तादाद मौजूद थी। दरयाफ्त की गयी कि गुलजारे-श्मशान की वजह क्या है? पता चला कि गोमती नदी के निचले इलाके की कच्ची बस्ती में जहरें की शराब पीने से गुजरी रात कई लोग गुजर गये और अभी भी तमाम लोगों के मरने की उम्मीद है। तमाम लाशें आ चुकी थीं, पता नहीं अभी कितनी और आयेंगी। देर-सबेर हो सकती है इस मुकाम पर फिर पुलिस जॉच हो गयी तो लेने के देने। हम चारों अंदर हो सकते हैं। फिर केलो का पोस्टमार्टम, लाश लावारिस हो जायेगी। क्योंकि सगे वालों की तलाश होगी। मगर इतनी जाँच-पड़ताल क्यों? अरे सबकी मौत का मुआवजा जो बँटना है भाई। कहीं गलत आदमी को चेक न मिल जाये तो लेने के देने पड़ जाये। मगर इस सबसे बड़ा खतरा पुलिस की पूछ-ताछ का था, जिससे हर शख्स हर्गिज-हर्गिज बचना चाहता था। उन्होंने विद्युत चालित शवगृह से पिंड छुड़ाया और वहाँ से चलने को हुये तब तक दूसरे टेम्पों से जोखन उतरता दिखा। वो अंत्येष्टि का सामान्य लिये हुये था। वह कुछ पूछता इससे पहले ही जोखन को खींचकर वे पाँचों केलो के मृत शरीर के साथ पुनः टेम्पों में सवार हुये और उन्होंने गोमती के निचले इलाके में बसी एक दूसरी बदनाम बस्ती बसारत पुरवा की तरफ कूच कर दिया। जोखू ने रास्ते में वापसी का सबब पूछा तो उसके तीनों पियक्कड़ मित्रों ने इन्तजार कराने की एवज में उसी अवधी में प्रचलित सारी अति वर्जित गालियाँ दे डाली। इतंजार का डाह निष्पादित करने के पश्चात उन्होंने बताया कि पुलिस के लफड़े से बचने के लिये वे लोग वहाँ से उल्टे पाँव भागे है। बरसाती ने पुनः अपनी चोट के लिये केलो और जोखन को बारी-बारी से कोसा। अब तक माघ की सर्दी जानलेवा दुश्मन की शक्ल में हाजिर हो चुकी थी। ठंड नसों में उतरती महसूस हो रही थी। कोहरा गोमती नदी के अस्तित्व को झुठला रहा था। धुँए और फाहों की गझिनता इतनी थी कि हाथ को हाथ तक न सूझता था। इसी सर्दी से जूझते हुये उन चारों ने लाश नीचे उतारी, टेम्पो वाला इस बार की किसी अनहोनी की आशंका से बढ़ा हुआ किराया माँगे बिना नौ दो ग्यारह हो गया। मौसम की मार और अनहोनियों से जूझते हुये उन चारों को इम्कान होने लगा था कि आज केलो का दाह संस्कार होना मुश्किल है। मगर कभी-कभार दूसरों की मुसीबतें किसी-किसी के लिये राहत भी बन जाती हैं। सर्दी ने लखनऊ में तमाम जाने ली थीं, सो तीन-चार वहाँ भी जलने की कतार में थीं। उन्होंने पंडित से बात की। हामी हो गयी। सबकी जेबें टटोली गयीं। सारे खर्चों और वापसी के किराये के अनुमान के बावजूद उनकी जेब में डेढ दो सौ रूपये बच रहे थे। उन सबों को किसी प्रकार की जल्दी न थी। मगर बाकी के लोगों के परिवार वाले ठंड से काँप रहे थे। वे जल्दी-जल्दी की रट लगाये थे और ज्यादा पैसे देने का प्रलोभन भी दे रहे थे। मगर प्रकृति की मार के

कारण उस शीतलहर में लाशें बहुत वेग से न जल पा रही थी। वहाँ मौजूद सभी लोगों के चेहरों पर बेचैनी, अकुलाहट एवं झुँझलाहट थी। इधर ये चारों सर्द हवाओं की मार से पस्त थे। समय था, पैसा बच रहा था, सर्दी थी ही, तो क्या रोड़ा था। रखवाली, किसकी रखवाली? मुर्दा लेकर कौन भागेगा? फिर भी पंडित को मुर्दे की खैरियत तकाकर वे चारों किसी पास की दारू की ठेकी की तलाश में निकल पड़े। उन्हें आधे घण्टे में वापसी की ताकीद की गयी थी, जो कबूल थी। उन्हें कौन सा ठेकी पर धूनी रमानी थी। चलते-चलते वे हनुमान सेतु तक आ गये। सेतु तक आ गये थे, तो लगे हाथ हनुमान जी को उन्होंने प्रणाम किया और मंदिर के पिछवाड़े से ही सटी बाँस की फट्ठी से बनी पुलिया पर से उतरकर वे ठेकी पर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने उन सारे पैसों की शराब पी, जो कर्माही के बाद बचने थे। सर्दी की सुरसुराहट से जूझते हुये उन्होंने अद्धो के कई दौर चलाये सो उन्हें घंटो लग गये।

इस बेतरतीब बैठक में उन्होंने केलो के सद्गुणों को याद किया, अवगुणों के जिक्र से परहेज किया और एक अच्छे साथी को खोने के गम में फूट-फूट कर रोये भी, भले ही नशे के आवेग में। जब तक उन्हें अपनी वापसी के सबब याद आते। पौने छः बज चुके थे, जबकि पंडित ने उन्हें हर हाल में सवा पांच तक लौट आने की ताकीद की थी। केलो का जिक्र आते ही वे यों फिक्रमन्द हो गये, मानो केलो मुर्दा न होकर मरीज हो, जिसकी हालत गुजरते वक्त के साथ बिगड़ती चली जा रही हो। देरी की वजह से हल्कान मुर्दे के खैरख्वाह खुद को और एक-दूसरे को कोसते हुये वहाँ से भागे। नशा काफूर हो चुका था। जिम्मेदारियों ने उन्हें बेचैन कर दिया था। एक-दूसरे के आगे पीछे चलते हुये वे केलो के जिस्म के पास पहुँचे तो उन्हें तसल्ली हुई कि मुर्दा सही-सलामत था, तो उनके चेहरों पर जिन्दगी की अलामतें लौट आयीं थी। उनकी फिक्र बिला वजह न थी। क्योंकि मूने और बरसाती ने एक बार मुर्दा चुराया था और उसे बेच भी दिया था तीन हजार में। किसी मेडिकल-वेडिकल के लाइन के आदमी को। वे लोग केलो को चुराकर क्या कर सकते थे - क्या पता? इसीलिये इन चारों का मुर्दे के लिए डर लाजिमी था। तहजीब और नफासत के शहर लखनऊ में जिन्दा मुर्दा कोई सलामत न था। आनन-फानन में अन्त्येष्टि की तैयारी हो गयी। छः बज चुके थे। सारी तैयारियाँ होने के बाद पंडित कल्लू शुक्ल को मंत्रोच्चार हेतु बुलाया गया। मगर पंडित जी के प्रस्ताव ने तो उन चारों को बेचैन कर दिया। ठंड और देरी का चक्रवृद्धि व्याज लगाते हुये उन्होंने अपने मेहनताने की रकम को तीन गुना कर दिया था। पंडितजी को पता था कि इतनी देर हो जाने के कारण कोई दूसरा पंडित उन्हें नहीं मिलेगा, फिर पंडितजी को खुन्नस भी हो गयी थी कि इन मुओं के पास दारू में उड़ाने के पैसे हैं तो फिर अन्त्येष्टि सस्ते में वे क्यों करें। मगर मोल-भाव करते-करते ड्योढ़ी रकम पर मामला तय हो गया। फिर जब रकम जोड़ी गयी तो वो उतनी ही थी जितनी कि पीने के बाद बची थी। कल्लू शुक्ला टस से मस न हुये। मुर्दे की रखवाली, जानलेवा शीतलहरी और इतने इन्तजार के बाद, श्मशान में उधारी नहीं चलेगी। पंडितजी ने अपना अनुभव बताया कि श्मशान और जुए की उधारी कभी किसी ने लौटकर नहीं चुकायी है। सो उधारी कबूल न हुई। गिड़गिड़ाना, कसम, आश्वासन से पंडितजी का रोज का वास्ता था इस श्मशान में। सो वे न पसीजे। सर्दी बढ़ रही थी। पूरी रकम शुक्लाजी के सामने थी। उन्हें रस महसूस न हुआ। कुद्ध दृष्टि से पहले उन्होंने पहले रकम को देखा, फिर उन चारों को। उन्होंने 'राम-राम' कहा और वो चलते बने। वे चारों किंकर्तव्यविमूढ़ थे। अँधेरा और सर्दी बढ़ रही थी। घाट सूने हो रहे थे। उनकी संवेदनायें जेब के अर्थशास्त्र से हार चुकी थीं। अन्तिम विकल्प यानी मंत्र किसे आते थे, मगर ईश्वर में आस्था तो थी, उसी को सर्वोपरि मानकर तौर तरीकों के लिये माफी माँगी गयी। चिता के तीन बार वे तीनों घूमें। बरसाती दूर ही खड़ा रहा। मूने चिता को तीन बार घूम कर बोला - "हे ब्रह्मा जी, केलो स्वर्ग आ रहा है।" ऐसा ही जोखन ने किया, तीन बार घूम कर हाथ जोड़कर बोला - "हे बिष्णु महराज, केलो को स्वर्ग में ले लेना।" पुनः पंइया ने भी ऐसा ही किया - हे शंकरजी, केलो की स्वर्ग यात्रा आसान करना।" तीनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये तो बरसाती हाथ उठाकर बोला, "केलो, इस दुनिया

में एक अच्छा आदमी था वो मरकर भी खुश रहेगा" और फिर केलो की चिता जला दी गयी। चिता जलते ही वे आह्लादित हो गये। उनके चेहरों पर उल्लास था। अन्त्येष्टि की चिन्ता काफूर हो चुकी थी। चिता से निकलती लपटों और उसमें जलते केलो के जिस्म से वे केलो को साक्षात स्वर्ग जाता देख रहे थे। मूने बोला, "केलो धाँसू आदमी था। भगवान इसे स्वर्ग ही भेजना। मेरे हिस्से का पुण्य भी इसे ही दे देना, अगर कम पड़े तो।" पंइया भी धीरे से बोला "केलो ने कभी किसी का दिल नहीं दुखाया। जानकीनाथ इसकी सब भूल-चूक माफ करना और इसे स्वर्ग में ही लेना।" बरसाती मुस्कराते हुये बोला "या अल्लाह, फिर गड़बड़ा गया। हे भगवान, केलो को स्वर्ग ही भेजना। उसके जाने से किसी का रास्ता जो साफ हो गया, क्यों बे जोखना।" जोखन ने कबरी को लेकर कहे गये बरसाती के कुटिल व्यंग्य पर एक गंदी-सी गाली दी, फिर ठंडी आह भरते हुये बोला "हाँ भगवान, केलो भाई को स्वर्ग ही भेजना। मुझे बहुत उधार दारू पिलाई उसने। बड़ा मरदराज आदमी था। कबरी को उसने नहीं छोड़ा, जबकि जानता था कि उसे सफेदा है। भगवान, स्वर्ग ही देना। मूने ने पूछा "का फर्क है कोढ़ और सफेदा में। केलो भाई को जाने से तो कबरी राँड़ हो जायेगी।

जोखन ने मूने को गरियाते हुये कहा "भगवान केलो भाई की आत्मा को शान्ति दे। मगर कबरी कहाँ भला केलो से अहिबाती (सुहागन) थी। क्यों मियाँ?" बरसाती की तरफ देखते हुये जोखन ने अपनी बात पूरी की। बरसाती गुर्राते हुए बोला "अब चुप भी करो रांड़ के जनों। ये श्मशान है, दिल्लगी का अड्डा नहीं। कबरी की बात छोड़, केलो भाई की बात कर।" अपने-अपने हाथ जोड़कर अपने-अपने इष्ट देवों को उन्होंने केलो को समर्पित किया। बरसाती ने पहले दुआ के लिये हाथ उठाये थे, मगर तड़ाक से प्रार्थना हेतु हाथ जोड़ दिये अन्य तीनों की भाँति। मिनट भर बाद ही, अपने-अपने भगवानों को उन्होंने केलो की मृत्यु के बाद की औपचारिकताओं हेतु तका किया। फौरन उन्होंने श्मशान के सेवक को बुलाकर कहा कि वो देर-सबेर केलो की अस्थियाँ गोमती में प्रवाहित कर दें। उन्होंने अपने सम्मिलित रकम का आधा हिस्सा उस सेवक को दे दिया। हालाँकि उस सेवक में विसर्जन का ये काम महज एक अद्धे में कर देने का वादा किया। मगर वे चारों जानते थे कि दारू की एवज में दिये गये वचन बहुत ही पक्के होते हैं। फिर वे हजरात इस रकम को बचाना बेमानी और फिजूल समझते थे। मूने ने समझाया कि सब नदियाँ आपस में बहनें होती हैं। अस्थियाँ चाहे गंगा में डालो या गोमती में। बात एक ही होती है। तीनों ने उनकी बात का समर्थन किया और सेवक ने सहमति दे दी। पैसे फिर भी बच रहे थे। दुःख था, सर्दी थी। जिम्मेदारी उतारने की संतुष्टि भी थी फिर इन्तजार किसका था? कुछ घंटे बाद वे लुढ़कते-सुबकते मौसी के ठेकी पर हाजिर थे। ठेकी आज सिर्फ उन चारों हेतु ही खुली थी। मौसी ने बताया कि देर से नहाने के कारण कबरी को बुखार चढ़ गया है मगर उन चारों का खाना उसने फिर भी बना दिया था। वे चारों अद्धे की बोतलों में पानी मिला-मिलाकर उसे पूरा करके पी रहे थे और केलो की यादों को ताजा कर रहे थे। उनकी बतकही से मौसी कुढ़ रही थी, कि बिना ब्राह्मण के की गयी अन्त्येष्टि केलो के स्वर्ग जाने में बाधक थी। सो उन लोगों ने अनर्थ कर डाला। मगर वे चारो आश्वस्त थे कि उन्होंने केलो की कर्माही पूरे मन से की है। भगवान ने उनकी प्रार्थना अवश्य सुनी होगी। केलो जरूर स्वर्ग जायेगा। मौसी लगातार बड़बड़ाये जा रही थी। दूसरे कमरे में पड़ी कबरी सिसक रही थी और वे चारों पीते-पीते फफक कर रो पडते़ थे। कुहरा बढ़ता जा रहा था। रात गहराती जा रही थी।

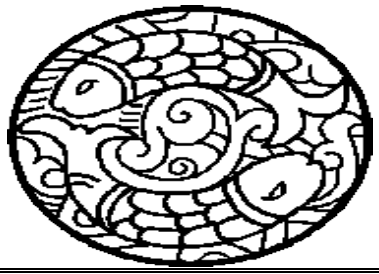

मैं कौन!

श्रुति पाण्डेय
(छात्रा दिल्ली विश्वविद्यालय)

मैं, मैं कौन हूँ?
एक शरीर, एक मन, इस संसार का एक कण?
या इस जड़ से, कुछ भावों, कुछ रिश्तों से परे हूँ मैं?
इस प्रश्न का उत्तर केवल अंतरआत्मा जानती है,
सो वह कहती है
मैं हिमालय की गोद से बहने वाली झरने की
तेज़ धारा हूँ,
झल-झल उज्जवल, अपनी मस्ती में बहने वाली,
मुझे दूषित करने का ख्याल रखते हो?
आओ, तुम्हें खुद में मिला कर, तुम्हारे सारे अवगुण
धोकर, अपने साथ बहा ले चलूँ,
पवित्रता में।

मैं तो उजियाला हूँ प्रकाश हूँ, तेज़ किरण हूँ
तुम मुझे अंधकार में ले जाने का ख्वाब देखते हो?
ले चलो, जितने गहरे अंधकार में ले जाओगे,
उतनी तेज़ चमक पाओगे।

मैं सुबह का घनघोर कोहरा हूँ,
आकर हटाने की कोशिश करोगे,
खुद ही मुझमें खो जाओगे।

मैं अथाह समुद्र हूँ, कितनी भी तेज गति से नदी रूप में आओ,
तुम्हें शांत कर अपना लूँगी,
मैं तो बहाव हूँ, समय की गति हूँ, रमती जोगन हूँ,
मुझे जानना चाहते हो तो बह बचो, रम जाओ मेरे साथ,
क्योंकि,
मुझे रोक न पाओगे और स्वयं रुक गए,
तो मुझे खो दोगे, भटक जाओगे,
जब तक संभलोगे, मैं जा चुकी रहूँगी,
कहीं दूर,
तुम्हारी सोच से,
इस जगत् की परिकल्पनाओं से
सबसे,
अपने आप से भी
न जाने कहाँ?

संचार माध्यमों के नए आयाम

डॉ. अंजु लता सिंह

वर्तमान समय में उक्त विषय ज्वलंत, सामयिक एवं विचारणीय है। आज संचार माध्यम हमारे लिये वरदान से कम नहीं हैं। संचार माध्यमों में अब सर्वाधिक प्रचलित माध्यम हैं - कंप्यूटर, लैपटॉप, टेलीविजन एवं मोबाइल।

संचार माध्यम दीपक की तरह हैं, इनसे घर में उजाला करें या घर जला दें दोनों बातों में से एक का ही चयन करना होगा। सम्भवतः रोशनी ही जीवंतता और जिंदादिली कायम रखती है तो स्पष्ट है कि ये माध्यम उपयोगी ही सिद्ध होंगे तभी तो जीवन "तमसो मा ज्योतिर्गमयः" की ओर उन्मुख होगा।

सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम 'मोबाइल' आज स्टेटस सिंबल बन चुका है। हर वर्ग का चेतन, समझदार और जागरूक नर-नारी, किशोर-किशोरी एवं युवा वर्ग 'मोबाइल' का फैन है। यह तो आजकल लगभग सभी की जरूरत बन चुका है।

सीमाबद्ध तरीके से किया गया इसका प्रयोग सकारात्मक सोच जगाता है। कहा भी गया है "अति से तो अमृत भी विष बन जाता है."

हम जब भी अंधाधुंध मोबाइल प्रयुक्त करेंगे तो बीमारियाँ और आँखों की पीड़ा हमें जरूर जकड़ेगी इससे बचकर, सँभलकर चलेंगे तो सोने में सुहागा होगा।

मोबाइल में "गागर में सागर" ही है। देखना, सुनना, लिखना, पढ़ना, मेल करना सभी तो फायदे भरे हैं इसमें। बिन इसके सब सून/शून्य है।

समय, पैसा, श्रम, दूरी सबकी बचत का माध्यम है मोबाइल। कर लो दुनिया मुट्ठी में "सटीक और प्रभावी उक्ति है।

इसमें वैश्विक सौहार्द्र, मित्रता, मनोरंजन, ज्ञान, दक्षता विकास, शोध सभी सन्निहित है। कम स्पेस घेरने वाला जादू का यंत्र है यह। इसे लाने ले जाने में असुविधा नहीं होती है।

कुल मिलाकर हमारी गुड मार्निंग से लेकर गुड नाइट तक का सच्चा साथी है मेरा, आपका और सबका मोबाइल।

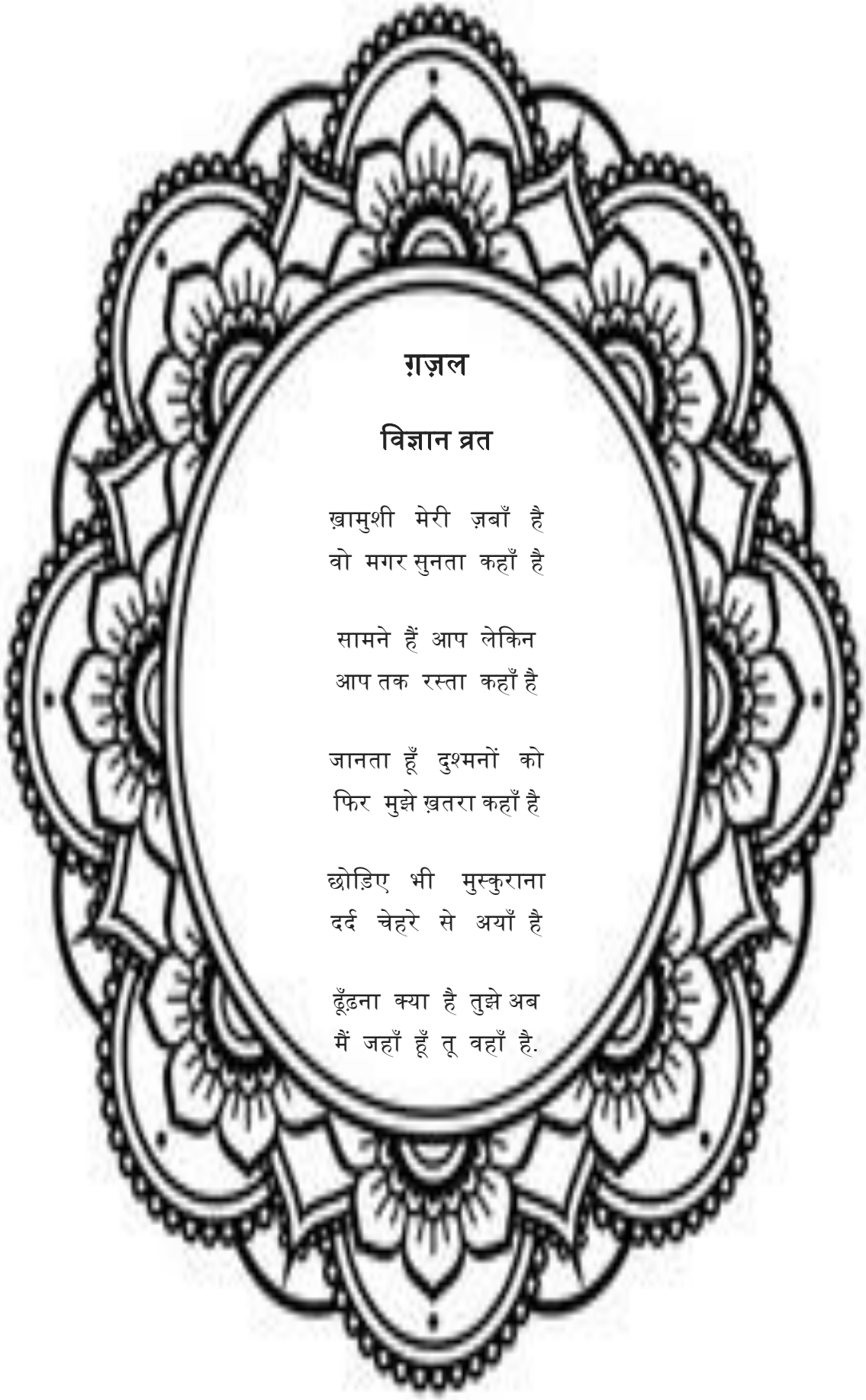

ग़ज़ल

विज्ञान व्रत

ख़ामुशी मेरी ज़बाँ है
वो मगर सुनता कहाँ है

सामने हैं आप लेकिन
आप तक रस्ता कहाँ है

जानता हूँ दुश्मनों को
फिर मुझे ख़तरा कहाँ है

छोड़िए भी मुस्कुराना
दर्द चेहरे से अयाँ है

ढूँढना क्या है तुझे अब
मैं जहाँ हूँ तू वहाँ है.

पोट्रेट

धीरज कुमार श्रीवास्तव

"देव! चुप क्यों हो? कुछ बातें करो।" सागर की लहरों को वापस आते देखकर सुमि ने कहा। सुमि की आँखें रेत पर लहरों को फिसलते देख रही थीं। सागर नीला था। क्षितिज में लाल रंग की रेखायें खिंची हुई थीं। ठंड़ी हवा के झोंके बदन को सहला रहे थे।

"क्या बातें करूँ, सुमि।" देव ने अनमने ढंग से कहा।

"याद है देव, यहीं हम दोनों ने कितने सपने बुने थे। कितना अच्छा लगता है न देव, डूबते हुए सूरज की रक्तिम किरणों में भीगे, समुन्दर के किनारे बैठकर, चीखती हुई लहरों को देखना। हवा के हल्के झोंके में अपने सपनों को बुनना। है न?"

सपने! तो क्या सुमि मुझे लेकर सपना बुन रही है? सुमि की बात सुनकर देव चौंक उठा। उसने सुमि की ओर देखा। सुमि का चेहरा सागर की लहरों पर था। उसे समझ नहीं आया कि क्या कहे?

"ऐसे क्या देख रहे हो, देव?" सुमि ने पलटकर असमंजस में घिरे देव को देखकर कहा, "तुम कुछ परेशान लग रहे हो? क्या बात है?"

"हाँ, सुमि। मैं कुछ परेशान हूँ। कुछ कहना चाहता हूँ तुमसे।" देव ने फुसफुसाते हुए कहा और रक्तिम आसमान की ओर देखने लगा।

"क्या कहना चाहते हो, देव? कहो? झिझक कैसी?" सुमि ने अपनत्व भरे स्वर में कहा।

"म-मैं जा रहा हूँ, सुमि।" निगाह झुकाए बुझे स्वर में देव ने कहा। देव का स्वर जैसे दूर से आता हुआ लगा सुमि को।

"जा रहे हो? कहाँ?" सुमि चौंककर बोली और देव का चेहरा देखने लगी।

एक जोर की गर्जना ! लहरें काँप उठीं।

"कलकत्ता। उसके बाद...शायद किसी दूसरे देश..."

"किसी दूसरे देश?"

"हाँ। माँ अब यहाँ नहीं रहना चाहतीं। वो कलकत्ता सैटल होना चाहती हैं...और मुझे..." कहते-कहते देव रुका।

"तुम्हें क्या, देव?" सुमि की आँखों ने पूछा।

"....मुझे नौकरी मिल गई है। मैं बाहर जा रहा हूँ।" देव ने बताया।

"क-क्या! तुम्हें नौकरी मिल गई है! तुमने बताया नहीं?" सुमि ने आश्चर्य से देखते हुए कहा।

"बताने वाला था लेकिन माँ की बात सुनकर..." देव आगे न कह सका। दूर लहरों को देखने लगा।

सुमि कुछ न बोली। चुपचाप देव का चेहरा देखती रही।

"लौटकर आओगे?"

"कह नहीं सकता।" देव ने कहा।

"दूर जाने वाले पंछी लौटकर अपने नीड़ों में आते हैं, देव।" आकाश में उड़ते पक्षियों को देखकर सुमि को ख़्याल आया।

"जानता हूँ लेकिन...कब? कह नहीं सकता।" इधर-उधर देखते हुए देव ने कहा।

दोनों के बीच एक उदासी उतर आई।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी, देव। वहाँ हम एक सुन्दर-सा घर बनाएँगे। जिसे हम अपने सपनों से सजाएँगे। ले चलागे न, देव?" सुमि ने देव का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा।

"नहीं सुमि। ऐसा नहीं हो पाएगा।" कहते हुए देव का स्वर काँपा।

"क्यों? क्यों नहीं हो पाएगा ऐसा, देव?" सुमि ने मासूम स्वर में पूछा और चेहरा देखने लगी।

"माँ...ऐसा नहीं चाहती।" देव ने अटकते हुए कहा।

वातावरण बोझिल हो उठा।

"तुमने बताया था?"

"हाँ।"

सन्नाटा गहरा गया। सुमि स्तब्ध देखती रही। कुछ देर बाद सन्नाटे को चीरते हुए कहा, "तुम क्या सोचते हो, देव? क्या तुम मुझे छोड़कर ऐसे चले जाओगे? बोलो देव, मेरा हृदय काँप रहा है?"

सुमि की आँखों में आँसू थे। होंठ कँपकँपा रहे थे। वो एकटक देव का चेहरा देख रही थी।

"समझ नहीं पा रहा हूँ सुमि, क्या कहूँ? माँ से विद्रोह नहीं कर सकता। मायूस नहीं कर सकता उन्हें। तुम जानती हो।" देव की आँखों में आँसू थे। एक छटपटाहट मन के अन्दर कहीं हलचल मचा रही थी।

"इतने दिनों का हमारा साथ क्या अधूरा रह जाएगा, देव? क्या तुमने मुझसे कभी प्रेम नहीं किया? तुम्हारे साथ मैं कितनी दूर तक चली आई। क्या मैं गलत थी? बोलो, देव?" आँसू सुमि के गालों पर सरक आए थे।

एक क्षण लगा जैसे सागर चिंघाड़ उठा हो!

देव ने सुमि की ओर देखा और तड़प उठा। सुमि ने अपना सिर देव की गोद में रख दिया और मूक आँखों से सागर की लहरों को देखने लगी। लहरें आ-आकर उसके पैरों को भिगो रही थीं। वातावरण में एक निस्तब्धता छा गई थी।

लहरें अपना सिर पत्थरों पर पटक रही थीं।

"तुम तो मेरी हालत जानती हो, सुमि। माँ को भी जानती हो। वो कितनी अकेली हैं। उन्होंने कितने सपने देखें हैं मुझे लेकर। क्या कुछ नहीं किया उन्होंने मेरे लिए। कितने कष्ट सहे हैं उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में। मैं

उनके सपनों को तोड़ नहीं सकता। मैं मजबूर हूँ, सुमि। हो सके तो मुझे माफ कर देना।" देव सुमि के बालों में ऊँगलियाँ फिराते हुए बोला। आँसू उसके गाल पर सरक आए थे। वातावरण में एक सिसकी भर गई थी।

"हमारे सपनों का क्या होगा, देव? उनके बारे में सोचा है?" सुमि के स्वर में उदासी थी। उसने दूर क्षितिज के पार देखते हुए कहा।

"एक सपना टूटता है तो एक मुकम्मल होता है, सुमि। जो सपना माँ ने देखा है मैं उसे पूरा करना चाहता हूँ। मेरा अब कुछ नहीं रहा। शायद हम दोनों का इतना ही साथ था।" देव के स्वर में पीड़ा थी। वो रेत को पैर से उड़ा रहा था।

"फिर तुमने इन आँखों को सपने क्यों दिखाए, देव? अब मैं क्या करुँगी? मेरा तो सब कुछ चला गया।" देव की आँखों में झाँकते हुए सुमि ने कहा। उसकी पलकों पर आँसू झिलमिला रहे थे। आँखों में एक बैचेन झील लहरा रही थी। होंठ काँप रहे थे।

देव कुछ न बोला। उसकी आँखें दूर अटकी हुई थी सागर के किनारे पर कहीं! जहाँ एक पतली रेखा नज़र आ रही थी।

"मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पाऊँगी, देव। मुझे भी साथ ले चलो। तुम जैसा चाहोगे, मैं वैसे रह लूँगी।" सुमि ने सिसककर कहा। उसे लगा जैसे हृदय को कोई मुठ्ठी में लेकर भींच रहा हो।

"विवश हूँ, सुमि, मैं नहीं ले जा सकता।" देव उठकर चहलकदमी करने लगा। सुमि निर्निमेष नज़रों से देखती रही।

कुछ देर के लिए सागर जैसे शान्त हो गया था। लहरें चुपचाप बहने लगी थीं। सुमि ने पैर के अँगूठे से रेत कुरेदते हुए कहा, "माँ को मना नहीं सकते?"

"कोशिश की थी लेकिन...वो तैयार नहीं।"

सन्नाटा फैल गया। शोर सिर्फ उन्मुक्त लहरों का था।

"तो जा रहे हो?" कुछ देर बाद सुमि ने लहरों को करीब आते देखकर कहा।

"हाँ।"

मन का पँछी फड़फड़ा उठा। एकाएक जैसे सब कुछ सूना-सूना लगने लगा था उसे। मन बहुत कुछ कहना चाहता था लेकिन होंठ कुछ कह नहीं पा रहे थे।

सन्नाटा छाया रहा।

"कुछ कहोगी नहीं...?" देव ठहरकर देखते हुए बोला।

"क्या कहूँ? कहने को अब क्या रहा, देव?" सुमि रेत कुरेदती हुई बोली। देव थके-थके कदमों से रेत पर चल रहा था। शब्द हवा में घुलकर एक-दूसरे तक आ-जा रहे थे।

अचानक आसमान में उड़ते पक्षियों का कलरव गूँज उठा। वो अपने नीड़ों की ओर लौट रहे थे। लहरें उद्विग्न हो उठीं।

"तुम कोई अच्छा-सा घर..."

"छोड़ो देव, अब इन बातों का कोई अर्थ नहीं रहा।" सुमि ने खड़े होने की कोशिश की लेकिन लड़खड़ा गई। बैठे-बैठे पैर जकड़ गये थे शायद।

"देखना, सुमि। गिर पड़ोगी।" देव तेजी से लपका।

सुमि ने हाथ देकर रोका। कहा, "सँभलने दो, देव। अब मुझे किसी सहारे की जरुरत नहीं।"

"सुमि...!"

"हाँ देव, चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मैं सँभल जाऊँगी। कब जा रहे हो?"

दोनों एकबार फिर चमकती रेत पर बैठ गए थे। निगाहें लहरों पर थीं। फेनयुक्त लहरें, जो कभी ऊपर उठतीं तो कभी नीचे गिरतीं। वातावरण सुरमई हो चला था।

"एक-दो रोज में।" देव ने बताया।

"ओह...!" एक सर्द आह हवा में घुल गई। आँखों के सामने ख़ामोश सागर लहरा उठा।

लहरों को देखते हुए काफी वक्त गुजर गया। आसमान की लाल चादरें अब धीरे-धीरे कालिमा में बदल रही थीं। हवाएँ ठंडी हो चली थीं। सागर की गर्जना बढ़ गई थी।

"चलो, सुमि। अँधेरा गहराने लगा है।" देव ने बादलों को देखकर कहा।

सुमि चुप रही। कुछ न बोली।

"सुमि...!"

"तुम जाओ, देव। मैं चली जाऊँगी।" सुमि ने धीरे से कहा और आकाश की गहराई को देखने लगी। देव को सुमि की आवाज़ दूर से आती हुई लगी। वो एकटक सुमि का चेहरा देखता रहा।

"कुछ दूर साथ नहीं चलोगी?" देव का बुझा स्वर। वो अँगूठे से रेत कुरेद रहा था।

सुमि का चेहरा शान्त था। जैसे कुछ हुआ न हो। वो एकटक देव का चेहरा देखती रही। सुमि को ऐसे देखते पाकर देव को उलझन-सी होने लगी।

सुमि ने कहा, "मैं तो सारी ज़िन्दगी साथ चलना चाहती थी, देव। तुमने ही रास्ते में छोड़ दिया। अब कुछ दूर साथ चले न चले, क्या होगा।" सुमि ने कहा और आँसू रेत पर चमक उठे।

"नाराज हो?" देव के होंठो से निकला।

"तुमसे नहीं देव, अपनी ज़िन्दगी से।" रेत भीग गई थी। देव ख़ामोश इधर-उधर देख रहा था। अँधेरा घना हो गया था।

"घर चलो, सुमि, अँधेरा हो गया है।"

"कहा न, तुम जाओ। मैं चली आऊँगी।"

"जिद नहीं करते, सुमि।" देव ने पुरजोर स्वर में कहा।

"जिद करती तो तुम्हें जाने देती !" कहकर सुमि लहरों को देखने लगी।

देव चुप हो गया। सुमि भीगे रेत को ऊँगलियों से कुरेदती रही।

"नहीं चलोगी?" देव ने कहा।

सुमि कुछ न बोली। देव क्षण भर देखता रहा फिर एक तरफ चल दिया। कुछ दूर जाकर बोला, "एक बार भी मुड़कर न देखोगी, सुमि?" देव का हृदय रो उठा।

सुमि की आँखों से आँसू गिरने लगे। किसी तरह बोली, "जाओ देव, मैं तुमसे नाराज़ नहीं हूँ। अब आवाज़ न देना।"

देव उदास नजरों से लहरों को देखता रहा। चाहकर भी कदम आगे न बढ़ा सका।

"मिलने आओगी?"

"कह नहीं सकती।" सुमि ने कहा।

लहरें उछल रही थीं। देव धीरे-धीरे चल पड़ा। सुमि के मन में सन्नाटा उतर आया।

देव दूर जा चुका था।

आसमान में तारे छिटक आए थे। वातावरण में लहरों की आवाज़ तेज हो गई थी। चारों तरफ चाँदनी फैल गई थी। सब कुछ ख़ामोश लग रहा था।

आँखों में आँसू लिए सुमि घुटनों पर ढ़ोडी रखे, देख रही थी दूर...देव को जाते हुए। देव एक परछाई बन चुका था। एक न भूलने वाली परछाई। सुमि की आँखों से आँसू गिर रहे थे। हिचकियों से शरीर काँप रहा था।

सब कुछ जैसे थम गया था। कैनवास पर मानों एक ज़िन्दगी निस्तब्ध थी।

"तुम चले गये, देव। तुम तो ऐसे न थे। यही सागर के किनारे थे। इन्हीं रेत में हमारे कदमों के निशान थे। यहीं हमने अपने सपनों को बुना था। वो कहाँ खो गये, देव? क्या वो रेत के सपने थे जो बिखर गए? हाँ...शायद...रेत के ही थे ! नहीं तो क्या तुम मुझे ऐसे छोड़कर जाते? चले आओ, देव, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती। मर जाऊँगी मैं, देव। हमारे सपने भले ही रेत के थे लेकिन वो हमने मिलकर देखे थे। ऐसा क्यों किया तुमने, देव? मुझसे क्या भूल हो गई?"

वातावरण मूक था। सागर की लहरें खामोश थीं। देव जा चुका था। आँसू रेत पर चाँदनी बनकर बरस रहे थे। लहरें चुपचाप आतीं और उसके पैरों को छूकर चली जातीं। वो सिसक रही थी। आँसू रेत में जुगनू की तरह चमक रहे थे।

वो एक पोट्रेट में तब्दील हो चुकी थी।

स्निग्ध ज्योत्स्ना

डॉ. अरुण खेवरिया

मेरे उर अम्बर पर स्निग्ध ज्योत्स्ना बनकर छाए तुम
निर्झर जैसी थिरकन को जीवन में लाये तुम !

नीरवता छायी थी चहुँ दिस
अंधकार गहरा था मन में
छम-छम छुनछुन पायल ध्वनि सुन
नव स्फूर्ति जगी मेरे तन मन में
सात स्वरों की सरगम अपने संग लाये तुम
निर्झर जैसी थिरकन को जीवन में लाये तुम !

जगती के कण कण में मानो
बही नेह की अविरल धारा
तंद्रा से मधुमास जगा
खिला प्रकृति का रूप निराला
रूप रंग की विपुल राशि को लेकर आए तुम
निर्झर जैसी थिरकन को जीवन में लाये तुम !

नवल तरंगों से उल्लसित
मन झूमा खुशियों से ऐसे
नदिया का कल-कल निनाद सुन
चहक उठे हों पंछी जैसे
नई उमंगों को आँचल में भर लाये तुम
निर्झर जैसी थिरकन को जीवन में लाये तुम !

क्या करें अपनी हिन्दी के लिए

(साभार राजभाषा दर्पण, अप्रैल २००० में कादम्बिनी में प्रकाशित)

जगदम्बी प्रसाद यादव
(पूर्व केन्द्रीय मंत्री)

संविधान की घोषणा से भारत की राजभाषा हिन्दी है. देश के प्रधानमंत्री हिन्दी के ओजस्वी वक्ता, कवि और सांस्कृतिक राष्ट्र के प्रवक्ता है. वे सहज हैं, सरल हैं, सम्वेदनशील हैं. राष्ट्र संघ में सर्वप्रथम इन्होंने हिन्दी गुंजायमान की थी. प्रथम बार देश की जनता स्वभाषा, राजभाषा का राष्ट्र संघ में बोलते जानकर गौरव से अभिभूत हो गई थी. विश्वास पैदा हुआ था कि जब अटल जी प्रधानमंत्री बनेंगे तो हिन्दी राष्ट्र संघ में वैकल्पित भाषा अवश्य बनेगी. अटल जी भारत के तीन बार प्रधानमंत्री बन गए पर हिन्दी जहाँ की तहाँ है. विश्व हिन्दी सम्मलेन राष्ट्र संघ की भाषा बनाने के लिए बार-बार आग्रह करता आ रहा है. संयोगवश हिन्दी राजभाषा का स्वर्ण जयंती चल रहा है. यह सवाल इस अवसर पर उठाना ही चाहिए. क्यों नहीं भारत सरकार इस पर विचार कर रही है? मौन क्यों है?

रोजी-रोटी की भाषा – पहला सवाल है, यह देश इण्डिया है, जिसकी वास्तविक राजभाषा अंग्रेजी है. सरकार की जो मशीनरी है वह अंग्रेजी है. अंग्रेजी इण्डिया की रोजी-रोटी की भाषा है. शिक्षा-दीक्षा, परीक्षा, नौकरी, प्रोन्नति, व्यापार, उद्योग की भाषा बनी हुई है. सरकारी प्रतिबन्ध अंग्रेजी के बदले हिन्दी पर लगा हुआ है. नौकरशाही तंत्र इतना मजबूत है कि प्रधानमंत्री को राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय घोषणा अंग्रेजी में करनी पड़ती है. लोगों को यह बात समझ में आने वाली नहीं है. गृह मंत्री जिनका अंग्रेजी पर वर्चस्व है वे अब हिन्दी में बोलने लगे हैं. संसद में इनके सचिवालय में अंग्रेजी का वर्चस्व बना है. जो अंग्रेजी वाले सदस्य हैं हिन्दी जानते हुए भी अंग्रेजी बोलना पसंद करते हैं. समाचार पत्र भी अंग्रेजी भाषा को महत्त्व देते हैं.

पहले ही गाँधी जी ने सावधान किया था कि अंग्रेजी स्वार्थी भाषा है. समाज को बाँट देगी और सही ही समाज में आज अंग्रेजीदाँ कुछ लोग लन्दन की ज़िंदगी जीते हैं और बृहत्तर समाज झुग्गी-झोपड़ी में रहने को बाध्य हैं. राजनेता बराबर कहते हैं जनता को शासन और विकास में भागीदार बनाएँगे पर जब तक राजकाज अंग्रेजी में चलेगा तब तक जनता को भागीदारी कभी नहीं मिलेगी. भारतीय संस्कृति को अंग्रेजी गहरे से विभाजित कर रही है. अस्मिता को धूमिल कर रही है तथा भारतीयों में अपनी ही भाषा के प्रति हीन भावना भर दी है. सब में स्वराज की भावना लुप्त हो रही है. नैतिकता की राष्ट्रीय भावना तिरोहित हो रही है. सम्वेदनशीलता का लोप होता नज़र आ रहा है. राष्ट्र के लिए त्याग, तपस्या की भावना भी घटती नज़र आ रही है.

हिन्दी भाल की बिंदी – आश्चर्य है कि हिन्दी देश-विदेश में प्रसार पाती जा रही है. विश्व हिन्दी सम्मलेन अब विदेशों में होने लगा है. करीबन डेढ़ सौ विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है. जर्मन देश हिन्दी में समाचार और कार्यक्रम कर रहे हैं. अपनी संस्कृति से जुड़ने के लिए हिन्दी पढ़ाने लगे हैं. चिन्तक ऐसा सोचने के लिए बाध्य हो रहे हैं कि स्वराज्य और स्व के लिए यह कार्यक्रम लेना आवश्यक हो गया है. हिन्दी में आत्मा की अभिव्यक्ति होती है. हिन्दी भारत के भाल की बिन्दी है.

अब देर ही हो रही है, अत: नौकरशाह और सरकार को हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए सक्षम कदम बढ़ाना पड़ेगा अन्यथा अँधेरा हो जायेगा. हिन्दी को संतों, ऋषियों की मनीषा का वरदान है. उन्होंने ही इसे

राष्ट्र भाषा का रूप दिया है. गैर हिन्दी भाषा मनीषा ने इसे राजभाषा-राष्ट्रभाषा बनाया. इसका प्रचार-प्रसार बढ़ाया, फिर सिनेमा ने इसे देश-विदेश में फैलाया.

आदेश की प्रतीक्षा – हिन्दी किसी संस्था या सरकार के प्रचार से नहीं बल्कि स्वयं की उर्जा से, सहजता, सरलता, समन्वय की भावना से क्रांति के पथ पर बढ़ती गई. इसीलिए कहा गया कि शासक हो या शासित, व्यापारी हो या धर्म-प्रचारक, उद्योगपति हो या वोट माँगने वाले हों, जिन्हें जन-सम्पर्क करना है, हिन्दी अपनानी पड़ेगी. सरकारी क्षेत्र में लाखों-लाख कर्मचारी हिन्दी में प्रशिक्षित कर दिए गए हैं. सभी तरह के शब्द-भंडार भर दिए गए हैं. आधुनिक यंत्र, कम्प्यूटर आदि को देवनागरी में बना दिए गए हैं. तैयारी सब हो गई है. आवश्यकता है प्रयोग करने की. सरकारी तंत्र हिन्दी के लिए तैयार हैं - सरकार के आदेश की प्रतीक्षा है.

ऐसा नहीं कि हिन्दी में काम नहीं हुए हैं. पर वास्तव में जब केन्द्रीय सरकार की कार्यवाही मात्र अंग्रेजी में होगी तो हिन्दी का प्रयोग कहाँ होगा? इस पर गम्भीरता से विचार होना चाहिए. हर विभाग में – कुछ अनुभाग में शत-प्रतिशत काम हिन्दी में होना चाहिए, ऐसी व्यवस्था भी करें, इसे लागू करना चाहिए. हिन्दी दिवस पर हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए संकल्प लेने का दिन बताना चाहिए. देश में पारस्परिकता बनती है तो सिवाय हिन्दी के यह नहीं हो सकता है.

दयनीय राष्ट्र-स्थिति – जिस देश में कई टुकड़े हों और हर टुकड़ा अपने-आप को स्वतन्त्र मानता हो, उसके जैसा दयनीय राष्ट्र कोई नहीं. हिन्दी को राजभाषा बने इतने वर्ष हो गए पर नीचे से या ऊपर से शुरू हो, तय नहीं हो सका. आखिर कहीं से तो शुरू हो! अत: अपने-आप शुरू करना चाहिए.

इस साल हिन्दी राजभाषा का स्वर्ण जयंती वर्ष चल रहा है. संयोग से श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी प्रधानमंत्री और श्री लालकृष्ण अडवाणी जी गृहमंत्री और राजभाषा प्रभारी मंत्री हैं. अत: आशा करनी चाहिए कि हिन्दी के रास्ते में पड़ी रुकावट दूर होगी तथा नौकरशाही राजभाषा को अपनाने का संकल्प लें.

सरकार की क्षमता प्रत्येक साल बावन हजार कर्मचारियों को हिन्दी भाषा, सात हजार कर्मचारी को हिन्दी टंकण तथा बारह सौ को हिन्दी आशुलिपिक प्रशिक्षण देने की है. समस्या प्रशिक्षण की नहीं है, आवश्यकता है प्रशिक्षित कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने देने का अवसर देने की. इसका एक उदहारण कम्प्यूटर आदि को द्विभाषी बना देना है. पर प्रश्न है कि अब तक केंद्र सरकार की सभी संचिकाएँ रोमन/अंग्रेजी में लिखी जाएँगी तो कौन, क्यों, कहाँ, कब से, किसके लिए देवनागरी का उपयोग करेगा?

अत: आवश्यकता है कि हिन्दी में मूल संचिका लिखी जाए, तभी तो हिन्दी प्रशिक्षण का सदुपयोग होगा. यह तभी होगा जब बड़े अधिकारी हिन्दी में विचार करेंगे, हिन्दी में संचिका लिखेंगे. इसका प्रारम्भ स्वर्ण-जयंती वर्ष में प्रारम्भ हो जाए तो सफलता अपनी भाषा को मिलेगी. राजभाषा प्रभारी मंत्री माननीय आडवाणी जी कुशल, दृढ़ निश्चयी, अनुभवी हैं, तथा वे जानते हैं कि स्वदेशी भाषा कैसे जगायी जा सकती है, जो स्वराज्य की भावना को परिपुष्ट करे. राष्ट्रीय जागरण का मन्त्र फूँकने वालों में वे आज के युग में अग्रणी हैं. संयोग से वैसे ही महाप्राण प्रधानमंत्री मिले हैं तथा कार्यान्वयन करने वाले राजभाषा सचिव अशोक कुमार मिले हैं.

कार्यान्वयन की प्रतीक्षा – स्वर्ण जयंती के लिए जिन कार्यक्रमों ने आज गृह मंत्रालय में सभी विभागों को प्रेरित किया उसका सही रूप में पालन हो तो राजभाषा का मार्ग प्रशस्त होगा. सरकार हिन्दी के मार्ग को प्रशस्त करने के लिए जुलाई, १९९९ तक में ११ लाख कर्मचारी को हिन्दी में प्रशिक्षित कर चुकी है तथा सहयोग के लिए एक लाख से ऊपर को हिन्दी टंकण में तथा बीस हज़ार से ऊपर आशुलिपिक में प्रशिक्षित कर चुकी है.

गीत

सुभाष ऋतुज

प्रिये! खुशियों की ये डोली मैं तेरे द्वार लाया हूँ।
तेरे जीवन के पतझड़ में बसंत बहार लाया हूँ।।
अभी तक बाग था सूना, तेरा यह भाग्य था सूना।
मेरे स्वर के बिना साथी, तेरा हर राग था सूना।
पड़ी थी माँग सूनी, सोलहों श्रृंगार लाया हूँ ।।
सर्द मौसम में मेरे प्राण का पपीहा रहा सहमा।
विरह की आत्मा कोयल को तेरी था लगा सदमा।
मिलन की बीन से बहती मैं मधुरस धार लाया हूँ।।
लो पहुँचा एक मंजिल पर सफर दो राहगीरों का।
प्रिये! अपना हुआ रिश्ता, मृदंगों औ मजीरों सा।
मैं मस्ती की कबीरों का ये संग त्यौहार लाया हूँ ।।
तेरे घर का मैं पाहुन हूँ, प्रिये! मैं मास फागुन हूँ।
लगे कुछ गुनगुनाने दिन तो लाया गीत मैं बुन हूँ ।
गीत में प्रीति के रंगों की मैं बौछार लाया हूँ।।

भारत बनाम इण्डिया

संतोष खन्ना

२१ वीं सदी के दूसरे दशक के अंतिम छोर के मुहाने पर खड़े भारत बनाम इंडिया ने लोकतंत्र के क्षेत्र में एक नया इतिहास रच डाला है। यहाँ के आम जनमानस ने पंथ, जाति और अन्य संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर जिस तरह से अपनी सामूहिक मनीषा को अभिव्यक्ति प्रदान की है वह किसी रक्तहीन क्रांति से कम नहीं है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय यह है कि इस क्रांति का श्रेय किसे दिया जाना है भारत को या इंडिया को? वास्तव में भारत जैसे विशाल और विपुल जनसँख्या वाले देश में इन दोनों शब्दों की परिभाषाएँ अलग-अलग हैं। यद्दपि भारत के संविधान में इन दोनों शब्दों की परिभाषा एक ही दी गयी है यथा "इंडिया दैट इज़ भारत" अर्थात् - इंडिया जो कि भारत है परन्तु क्या इन दोनों शब्दों के उच्चारण से एक ही अर्थ ध्वनित होता है? इस परिभाषा के अनुसार यह दोनों शब्द एक ही देश को सम्बोधित हैं परन्तु वस्तुतः भारत और इंडिया इन दोनों की सोच अलग है, स्वरुप अलग है और यहाँ तक कि संस्कृति, सभ्यता और आचार-व्यवहार भी भिन्न-भिन्न है।

यह कहा भी जा रहा है कि राजनैतिक गलियारों में जो नया इतिहास रचा गया है वह यहाँ के कम पढ़े लिखे, अन्धविश्वासी और असभ्य लोगों के कारण हुआ है। यह लोग अंग्रेजीदाँ नहीं है, बुद्धिवादी नहीं है बल्कि गरीब वर्ग है या जिनके पास अनाप-शनाप पैसा नहीं है। जो धनाढ्य हैं जो बौद्धिक हैं जो भारतीय संस्कृति और धर्म को हेय दृष्टि से देखते हैं और पाश्चात्य आयातित संस्कृति के झूलों में अपनी उड़ाने भरते हैं उन्होंने इस नए भारत को नकारा है। यह एक ऐसा वर्ग है जिन्हे परिवर्तन से परहेज है क्योंकि किसी परिवर्तन से उनकी अस्मिता और अस्तित्व खतरे में आ जाता है। पर यह वर्ग इतना काइयाँ है कि वह बड़े-बड़े कथनों से यह प्रदर्शित करता रहता हैं कि लोकतंत्र, जनता और देश का अस्तित्व खतरे में है।

जबकि यही लोग पिछले वर्षों में देश में आपात स्थिति जैसे माहौल बनने का रोना भी रो रहे थे परन्तु अपना-अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए अभिव्यक्ति की आजादी का जम कर दुरुपयोग कर रहे थे। इन्ही की वजह से ही एक ही देश में भारत और इंडिया का निर्माण हुआ है। एक देश, एक सीमा रेखा, एक सरकार, एक संविधान, एक जैसे अधिकार परन्तु पिछले दशकों में ऐसा क्यों रहा कि सभी की यात्रा एक-सी नहीं होती, कुछ के लिए जीवन फूलों का सफर होता है और अधिकाँश के लिए वह रास्ता हमेशा काँटो से भरा रहता है। कुछ लोग हथियाई गयी सुविधाओं और संचार क्रान्ति के बल पर उन्नति की बुलंदियों को छू रहे हैं परन्तु अधिकाँश लोग ऐसे हैं जिनके हिस्से में रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य की बुनियादी सुविधाएँ नहीं आती थी। देश में अन्न से अट्टे पड़े भण्डारों के बावजूद उनके हिस्से में भूख और भुखमरी आती रही है।

प्रश्न यह है कि क्या इस भारत को इंडिया बनाने की जरूरत है? नहीं। इस भारत को इंडिया बनाने की जरुरत नहीं, बल्कि भारत को और सशक्त करने की जरुरत है। इसी भारत में देश की अधिकाँश जनता बसती है जिनके सशक्तिकरण के लिए किये जा रहे उपायों ने अपना प्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया है। यह कहा जा रहा है कि अब हर घर में बिजली पहुँच गई है, यथासम्भव करोडों शौचालयों की व्यवस्था की गई है, करोडों घरों में गैस सिलेंडर उपलब्ध कराये जा चुके हैं और किये जा रहे हैं। जिनके सर पर पक्की छत नहीं, उन्हें मकान उपलब्ध कराये जा रहे हैं। सभी गाँवों में सड़कें, शिक्षा सुविधाएँ और सूचना क्रांति के साधन उनकी पहुँच में लाने के प्रयास हो रहे हैं। इतनी विशाल और विपुल जनसँख्या के चलते हो सकता है अभी भी कुछ लोगो तक

कुछ सुविधाएँ नहीं पहुँची हो लेकिन सब तक बिजली पहुँचने से बहुत लोगों का सशक्तिकरण हुआ है क्योंकि बिजली की रोशनी में वह अपने जीवन में पसरे अन्य अँधेरों को दूर करने में स्वयं भी सक्षम हो सकते हैं। इन नए बदलावों ने भारत को एक सशक्त भारत बनाने के रास्ते पर डाल दिया है और आगे भी उसी दिशा में प्रयास अनवरत रखने से शीघ्र ही समूचा भारत अपना अस्तित्व और अस्मिता के प्रश्नों को सुलझा लेगा।

अब इंडिया पर आते हैं। हमें सात दशक पहले स्वतंत्रता तो प्राप्त हो गयी थी किन्तु पराधीन काल में जिस प्रकार की मानसिकता निर्मित हुई थी वह स्वतंत्रता के बाद भी पराधीन और उपनिवेशवादी प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो सकी थी जिसके कारण स्वतंत्रता के परिवेश में साँस लेते हुए भी नौकरशाही। पुलिस की उपनिवेशवादी प्रवृत्ति। आयातित शिक्षा व्यवस्था। आयातित भाषाई वर्चस्व और इन सबसे अधिक उपनिवेशवादी प्रवृत्ति वाले वर्चस्वी तत्त्व इंडिया को भारत में तब्दील करने के रास्ते में बहुत बड़ा रोड़ा बन रहे हैं और अभी भी वह रुकावटी दीवारें पूरी तरह ध्वस्त नहीं हुई हैं। जन-जन ने जिस भारत का निर्माण किया है अगर उसे वास्तविकता में तब्दील करना है तो आने वाले समय पर प्रत्येक कदम फूँक-फूँक कर रखना होगा क्योंकि नए भारत के लोगों ने सामंतशाही और धनी और उच्च वर्ग के वर्चस्व को नकार दिया है और उनकी स्वाभाविक रूप से आशाएँ और आकांक्षाएँ बहुत बढ़ गयी है। इसके साथ ही पराजित और परास्त तत्त्वों की पहले की भाँति ही भाषा में हिंसा और विनाश की धमक सुनाई देने लगी है। हो सकता है ऐसे तत्त्व इतने निर्णीत जनादेश के बावजूद देश में अफरा-तफरी और अराजकता का माहौल अवश्य बनाने पर उतारू हो जाएँगे। शायद इन्ही में से कुछ तत्त्व तथाकथित हिंदुत्व का छद्म चोला ओढ़ कर ऐसी घटनाओं को अंजाम देने लगेगें, जिससे नई सरकार का नाम बदनाम हो। ऐसा पहले भी किया जाता रहा है जैसा कि अभी दो एक घटनाएँ गोरक्षा के नाम पर सामने आ रही हैं। ऐसी घटनाओं को रोकने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए।

पिछले पाँच वर्ष में गरीब लोगों के कल्याण के लिए कई कीर्तिमान स्थापित हुए किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि देश की बहुत सी समस्याओं का समाधान हो गया है। भारत जैसे विशाल देश में इतनी विराट जनसँख्या की समस्याओं के समाधान के लिए युद्ध स्तर पर प्रयास किये जाने की जरुरत है। पिछले पाँच वर्षों में सरकार ने आते ही कई अर्थों में जनता का सशक्तिकरण करना आरम्भ कर दिया था। यथा ३५ करोड़ लोगों के बैंक खाते खोलना, जिससे गरीब लाभार्थियों को उनका देय उनके खाते में सीधा पहुँचे, हर व्यक्ति को शिक्षा, रोजगार, राशन तथा जीवन की अन्य मूलभूत सुविधाओं के लिए दस्तावेज देने पड़ते थे जिनका सत्यापन बड़े अधिकारियों द्वारा कराया जाना जरूरी होता था किन्तु २०१४ में मोदी सरकार ने आते ही यह व्यवस्था अनिवार्य कर दी कि ऐसे दस्तावेज हर व्यक्ति स्वयं ही अपने हस्ताक्षर से सत्यापित कर लें और वही हर स्थान पर मान्य होंगे। यह जनता के सशक्तिकरण का एक अनूठा उदाहरण था। और भी ऐसे फैसले हुए, सभी का उल्लेख यहाँ किया जाना सम्भव नहीं है। बस एक और उदाहरण यहाँ देना पर्याप्त होगा। मोदी सरकार ने आते ही भर्ती में गैर-राजपत्रित हर पद की साक्षात्कार की प्रक्रिया को समाप्त कर दिया। कहने का अभिप्राय यह है कि अधिकारी वर्ग से नीचे के हर पद पर भर्तियों के लिए अब कहीं कोई साक्षात्कार नहीं होता। इस क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार को एक आदेश ने समाप्त कर दिया। अध्यापकों के साक्षात्कार में हुए घोटालों के कारण एक राज्य विशेष के मुख्यमंत्री पिता और पुत्र आजीवन जेल में सड़ रहे हैं। साक्षत्कारों की प्रक्रिया हटाने से न केवल जनता का सशक्तिकरण हुआ बल्कि स्रोत पर भ्रस्टाचार पर अंकुश लग गया।

वर्तमान सरकार के सम्मुख इंडिया को भारत के रूप में सशक्त करने के लिए अनेक चुनौतियाँ हैं। सबसे प्रथम तो शिक्षा पद्धति में भी आमूलचूल परिवर्तन किया जाना चाहिए। स्वतंत्रता के सात दशक के बाद अब भी हमारी शिक्षा वही उपनिवेशवादी आधार पर चल रही है इसका भारतीयकरण किया जाना चाहिए।

इसके साथ ही अब हर नागरिक को शिक्षा का मूलभूत अधिकार है अतः यह सुनिश्चित किया जाए कि देश के हर नौनिहाल को शिक्षा मिले और साथ ही जो भी उसे शिक्षा दी जाए उसका आधार पुख्ता हो । सरकारी स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जाए और हर स्कूल में पर्याप्त संख्याँ में अध्यापक और सुविधाएँ उपलबध हों और सभी स्कूलों में अनुशासन हो।

जनादेश से आये बदलाव का सब जगह और सभी के द्वारा पूरा सम्मान हो। इस जनादेश के लिए जो लोग जनता को बेवकूफ बता रहे हैं उन्हें अपने आत्मालोचन की जरुरत है। देश जनता के लिए है और जनता देश के लिए है। जो दीवार पर उभरे इस आगत सन्देश की उपेक्षा करेंगे समय कभी उनका सम्मान नहीं करेगा, यह बिल्कुल सत्य है।

मेरा देश

डॉ. स्नेह ठाकुर

मेरा देश आज
दो नामों में बँट गया है
भारत और इण्डिया
भारत पूर्वीय दैवीय गुणाच्छादित सभ्यता का प्रतीक
और इंडिया पाश्चात्य सभ्यता का.
भारत इंडिया के भार से
दबा जा रहा है
अधोपतन के गर्त में
डुबाया जा रहा है.
भारत की सात्विक संस्कृति की छाती पर
इंडिया की तामसिक वृत्ति
चढ़कर बैठ गई है
और उसे सौतेले भाई की भाँति
चौखट से बाहर
निष्कासित कर रही है.
एक ओर जहाँ इंडिया
दिन दूना रात चौगुना
उन्नति के शिखर पर
पहुँच रहा है,

वहीं भारत
सहमा-सा, ठिठका-सा
दम तोड़ता हुआ
घुटनों पे खड़ा रह गया है.
जिस भारत में दूध की नदियाँ बहती थीं
वहाँ के नागरिक को आज कहीं-कहीं
स्वच्छ पानी भी दुर्लभ है
इंडिया का निवासी
पेप्सी, कोक, बियर की बहुलता से
सराबोर है.
भारत आज भी
पगडंडी पर
बैलगाड़ियों में भ्रमण करता है
इंडिया में कारों की कमी नहीं
एक्सप्रेस हाइवे पर
फर्राटे से
मार्ग में आने वाले
किसी भी अनचाहे व्यवधान को
कुचलती चलती है.
इंडिया का निवासी
अँग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच पढ़ता है
भारत का
रोजी-रोटी के चक्कर में
पेट की आग का ईंधन जुटाने
तन ढाँकने
मज़दूरी-मशक्कत करने में
व्यस्त रहता है
क ख ग की शिक्षा से भी
दूर छिटक जाता है.

इंडिया की महिलाएँ
चुस्त-दुरुस्त फैशन में
शिखरोन्मुख हैं
सुंदरियाँ मिस यूनीवर्स, मिस वर्ल्ड के पद पर
पदासीन हैं
पर भारत की नारी
अभी भी उत्पीड़ित है.

इंडिया में
दिखावे के चक्कर में
लाखों रूपये खर्च किए जाते हैं
पर भारत में
करोड़ों लोगों को
दो जून की रोटी भी नसीब नहीं होती है.

भारतीय साहित्य, संस्कृति दम तोड़ रही है
और पश्चिमीय सभ्यता जोरों से पनप रही है
लोकगीत, नृत्य, कला
अपने ही घर में सिर झुका
लज्जित-से कोने में खड़े हैं
और इंडिया के पाँव
पाश्चात्य धुन पर थिरक रहे हैं.

भारत दाने-दाने और पैसे-पैसे का मोहताज़ है
और इंडिया काले धन से मदहोश है
इंडिया पर्याय है ऐय्याशी का
तो भारत संघर्ष का.

इंडिया और भारत के बीच
एक गहरी खाई खुद गई है
जो दिनों-दिन अंधे कुएँ-सी
गहराती जा रही है.

भारतीय इंडियन बन
अपनी मातृभाषा को परे धकेल

पराई भाषा में,
उधार मिली संस्कृति में
सुखानुभूति अनुभव करता है
यह कैसी विडम्बना है!

एक ज़माने का इतना समृद्धशाली भारत
माँगी हुई संस्कृति के बल पर
अपने को ऊँचा दिखाने के विकृत प्रयत्न पर
दिखता है कितना दारुण, हास्यास्पद.

जो देश था हर गौरव से भरपूर
वही उन सब को तुच्छ मान
नकली हीरों की चमक से प्रभावित
गलत सिद्धांतों की बैसाखियाँ लगाकर
भौतिकता की अंधाधुंध दौड़ में शामिल
बदहवास भागता जा रहा है.

काश! भारत
स्वयं के नाम से ही जाना जाता
उसका अँग्रेजी अपभ्रंश रूपांतरण न होता
भारत भारत ही रहता इंडिया न बनता.

काश! आज भी भारत जाग जाए
अपना मूल्य पहचाने
संकट के कगार पर खड़ा भारत
अतीत के असंख्य अनमोल रत्नों की
धूल झाड़-पोंछ कर
उन्हें चमका-चमका कर
अपने बूते पर
विश्व में अपना तिरंगा फहराए.

हार के आगे ही जीत है

आचार्य शिवम्

'हार के आगे ही जीत है' – यह बात अक्सर सुनने को मिल जाती है। अब प्रश्न उठता है कि 'क्या जीत का रास्ता हार से होकर जाता है?' 'क्या हार जीत का मार्ग प्रशस्त करती है?', 'क्या हार को जीत मान लिया जाय?', 'क्या हार होने पर हार से सबक लेकर जीत जाने के लिए कोशिश करनी चाहिए? या कि 'हार-जीत से परे अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए?' इस तरह के कई और भी प्रश्न हो सकते हैं। परन्तु, बात केवल प्रश्न का नहीं है, कुछ और भी है जिसे जानना-समझना जरूरी है। पहले प्रश्न को ही ले लें तो यह जरूरी नहीं कि हर जीत का रास्ता हार के गलियारे से होकर ही जाता हो। इसी प्रकार से प्रत्येक हार जीत का ही मार्ग प्रशस्त करती हो, यह भी निश्चित नहीं। हार को जीत मानना तो कुछ अधिक ही दार्शनिक (प्रेमी, पागल और फकीर के लिए उपयुक्त) हो जायेगा – 'प्रेम वह व्यवहार है जो जीत माने हार को/ तलवार की भी धार पर चलना सिखा दे यार को' (कवि दिनेश सिंह)। हार से सबक लेकर जीत जाने के लिए कोशिश करने में कोई बुराई नहीं। प्रसिद्ध साहित्यकार सोहनलाल द्विवेदी जी कहते भी हैं कि – 'लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती/ कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।' द्विवेदी जी कोशिश के महत्व को रेखांकित तो करते हैं, किन्तु यह भी कह देते हैं कि 'कोशिश' करने वाले की हार नहीं होती है। यानी कि जीत होगी भी कि नहीं, इस पर वह कुछ कहते ही नहीं दिखते। वह मेहनत करने और विश्वास एवं उत्साह बनाये रखने का मूल मन्त्र जरूर देते हैं, कुछ इस तरह से –

असफलता एक चुनौती है, स्वीकार करो
क्या कमी रह गई, देखो और सुधार करो
जब तक न सफल हो, नींद चैन को त्यागो तुम
संघर्ष का मैदान छोड़ मत भागो तुम
कुछ किये बिना ही जय-जयकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

सफल होना एक कला है; असफल होना उससे भी बड़ी कला है। सफल होने पर कर्ता को अक्सर अपनी अच्छाइयाँ ही दिखाई देती हैं, कमियों पर तो उसकी नज़र ही नहीं जा पाती। किन्तु, असफल होने पर कर्ता सदैव दोहरे अनुभव से गुज़रता है – वह अपनी अच्छाइयों और कमियों को जाँचता-परखता है और यथा-शक्ति उनमें सुधार भी करता है। इस दृष्टि से तो असफलता (हार) सफलता (जीत) से बड़ी कला हुई? कला एक साधन तो हो सकती है, साध्य कभी नहीं। इसलिए यहाँ पर असफलता साधन-भर है और सफलता साध्य। इस साधन और साध्य के बीच की दूरी को तय करने के लिए, अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति, सूझ-बूझ, कठोर परिश्रम एवं लगन भी बेहद जरूरी है। यह सब होने पर हो सकता है कि कर्ता को जय-जयकार का अनुभव हो जाय और उसकी हार न हो। अब प्रश्न उठता है कि - 'फिर जीत का क्या?' भगवद्गीता कहती है कि 'हार-जीत से परे जाकर' अपना नियत कर्म करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है, कर्म के बिना तो शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता –

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।

भक्त के लिए भक्ति श्रेष्ठ है, ज्ञानी के लिए ज्ञान श्रेष्ठ है और कर्मयोगी के लिए कर्म श्रेष्ठ है। इससे तो यही हुआ कि 'श्रेष्ठ' की प्राप्ति ही जीवन का उद्देश्य है। हार-जीत तो अपनी जगह हैं। अब प्रश्न उठता है कि यदि तात्विक दृष्टि से हार का विलोम जीत नहीं हो सकता (द्विवेदी जी की कविता के संदर्भ में), तो क्या श्रेष्ठता जीत का पर्याय हो सकती है? आलोचक-विचारक इस प्रश्न पर मौन भी हो सकते हैं। मौन होना कोई बुरी बात तो नहीं। किन्तु, भावुक के मन में यह प्रश्न तो उठेगा ही कि आखिर क्यों हार-जीत 'नहीं आते कार (लकीर) के भीतर/ निराकार जपते हरि हर हर' (रावण-सीता संवाद) और क्यों कृष्ण-अर्जुन संवाद इस श्लोक में 'कर्म करना श्रेष्ठ है' कहकर इतिश्री कर लेता है। कृष्ण तो जगद्गुरु हैं – 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम!' वह तो सब जानते हैं। कहीं वह हार-जीत की सीमाओं की ओर तो इशारा नहीं कर रहे? जैसे वह कह रहे हों – हार-जीत से तो राग-द्वेष उपजता है, दुःख-सुख उपजता है; इससे आनंद नहीं मिलने वाला। आनंद तो हार-जीत से परे जाकर कर्म करते रहने में है - निष्काम कर्म।

प्रश्न यह भी है कि कृष्ण जैसा गुरु सबको कहाँ मिलता है। फिर तो प्रश्न यह भी होगा कि अर्जुन जैसा शिष्य भी सबको कहाँ मिलता है। पर सच तो यह है कि खोजने से सब मिल जाता है; कोशिश करने से सब कुछ सम्भव है। सम्भव है तो प्रगति है। मनुष्य प्रगति करना चाहता है – उसकी यह प्रगति आंतरिक भी हो सकती है और बाह्य भी। किन्तु, प्रगति ऐसे ही नहीं होती। प्रगति-पथ पर संघर्ष और सृजन दोनों साथ-साथ चलते हैं। कभी-कभी तो संघर्ष इतना कठिन हो जाता है कि कर्ता को महसूस होने लगता है कि वह असहाय है, कमजोर है, शक्तिहीन है और इसलिए वह सार्थक सृजन नहीं कर सकता, अपने लक्ष्य को भेद नहीं सकता, अपने श्रेष्ठ को प्राप्त नहीं कर सकता – जबकि सच कुछ और ही होता है। सच तो यह है कि इस ब्रह्माण्ड में कोई भी असहाय, कमजोर, शक्तिहीन नहीं है। जरूरत सिर्फ इतनी-सी है कि वह अपने आपको पहचान ले कि उसके भीतर भी शक्ति है, उत्साह है, उमंग है, विद्या है, ज्ञान है, शील है, गुण है, धर्म है और वह अपनी हार को जीत में और जीत को आनंद में बदलने की सामर्थ्य रखता है। तब निश्चय ही वह अपनी समस्त शक्तियों को संगठित कर उनका ठीक से प्रयोग करते हुए अपने मार्ग पर प्रशस्त हो सकेगा। आज दुनियाँ में ऐसे तमाम लोग हैं जिन्होंने अपने आपको पहचाना, अपनी शक्तियों को पहचाना और अपने सत्कर्मों के बल पर बेहद सफल हुए। कभी लियोनार्डो द विन्ची को एक चित्र बनाने में वर्षों लगे थे, कभी डार्विन पिता की नजर में आलसी हुआ करते थे, कभी स्वामी विवेकानंद नरेन्द्र हुआ करते थे, कभी होंडा इंटरव्यू में निराश हुए थे, कभी रामानुजम बारहवीं में फेल हुए थे, कभी अब्दुल कलाम साहब अखबार बेचा करते थे, कभी नरेन्द्र मोदी चाय बेचते थे, कभी टॉम क्रूज को १४ साल में १५ स्कूल बदलने पड़े थे, कभी मिस्टर बीन अपने साथियों के बीच मजाक का पात्र बने थे आदि – किन्तु, इन जैसे तमाम लोगों ने कभी हार नहीं मानी और इतिहास रच दिया। ऐसी विशिष्ट विभूतियों ने यह साबित कर दिया कि हार के आगे ही जीत है और जीत के आगे आनंद। आप इसे परमानंद भी कह सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नहीं।

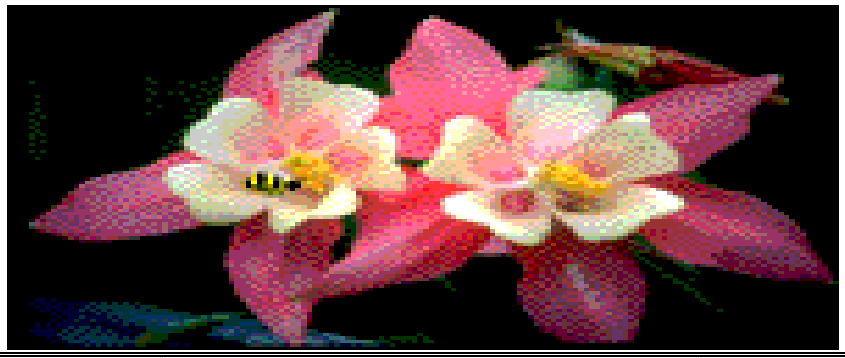

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

दशानन रावण	(उपन्यास)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण (शोध-ग्रन्थ)	
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)	
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी -	संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(ईशोपनिषद, दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
अनभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत

Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित